वैज्ञानिक अध्यात्म के
क्रान्ति दीप
-डॉ. प्रणव पण्ड्या

वैज्ञानिक अध्यात्म
के
क्रान्ति दीप

वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रयोगों की निरन्तरता जीवन को सत्यान्वेषी किन्तु संवेदनशील बनाए रखती है। इसके द्वारा मनुष्य में वैज्ञानिक प्रतिभा एवं सन्त की संवेदना का कुशल समायोजन व सन्तुलन बन पड़ता है। इसका विस्तार यदि समाज व्यापी होगा तो समाज धर्म विशेष, मत विशेष व पंथ विशेष के प्रति हठी एवं आग्रही नहीं होगा। यहाँ सम्पूर्ण विश्व के सभी मत एवं सभी पंथ की समस्त श्रेष्ठताएँ सहज ही सम्मानित होंगी। वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रयोगों के सभी परिणाम समाज में आध्यात्मिक मानवतावाद की प्रतिष्ठा करेंगे। इसी सत्य का साक्षात्कार युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने युगक्रान्ति करने वाले प्रकाश दीप के रूप में अपनी चेतना के समाधि शिखरों पर आसीन होकर किया था। इससे ही प्रज्जवलित अनगिन क्रान्ति दीप युग की भवितव्यता को उज्ज्वल स्वरूप देने वाले हैं।

अनुक्रमणिका

समर्पण के स्वर

वैज्ञानिक अध्यात्म के क्रान्ति दीप हर युग में प्रकाशित हुए हैं। प्रत्येक युग में धरती के पूर्वी एवं पश्चिमी छोर पर मानव एवं ईश्वर से प्रेम करने वाले महामानवों व दैवी विभूतियों ने इन क्रान्ति दीपों को प्रज्ज्वलित किया है। कुछ ने आध्यात्मिक क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रयोग किए हैं, तो कुछ ने वैज्ञानिक प्रयोगों को आध्यात्मिक अन्तर्प्रज्ञा एवं परिष्कृत संवेदना से संवारा है। नवयुग की दहलीज पर, बीसवीं सदी एवं इक्कीसवीं सदी की संक्रमण बेला में प्रज्ञावतार युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव ने विज्ञान व अध्यात्म की समस्त श्रेष्ठताओं को समन्वित कर इस नए युग को वैज्ञानिक अध्यात्म का क्रान्ति मन्त्र दिया। उन्होंने मानवीय भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए पिछले सभी प्रयासों में अपने तप एवं प्रज्ञा का प्रकाश उड़ेलकर वैज्ञानिक अध्यात्म का यह अनूठा क्रान्तिदीप प्रज्ज्वलित किया। इसमें अतीत की धरोहर, वर्तमान का प्रयास और भविष्य का प्रकाश है।

प्रथम मिलन की बेला में उन्होंने मेरे अन्तःकरण में इसका अन्तर्दीप जलाया। यह सम्भवतः वैज्ञानिक अध्यात्म के महामन्त्र में मेरी दीक्षा थी। समय के साथ इसके उजियारे में मस्तिष्क एवं हृदय प्रकाशित होते गए। उनके साथ पहले सान्निध्य की, फिर चिन्तन की, बाद में चेतना की प्रगाढ़ता बढ़ती गयी। बाद में उन्होंने मुझे अपनी आत्मा का अविभाज्य अंश बना लिया। इसी के साथ मुझे समझ में आया कि वैज्ञानिक अध्यात्म में ही मुझको अपने जीवन का उद्देश्य

खोजना है। इसके प्रकाश को प्रसारित एवं विस्तारित करना है। अन्तिम शिक्षा के रूप में उन्होंने मुझसे कहा था- वैज्ञानिक अध्यात्म का मतलब है विज्ञान एवं अध्यात्म की समस्त श्रेष्ठताओं का समन्वयन कर नवयुग के नवीन दर्शन व नवीन विज्ञान का प्रवर्तन।

मेरी चित्त भूमि में उनके द्वारा जलाए गए इस प्रेरणा दीप का ही असर रहा कि सभी कार्यों एवं व्यस्तताओं के साथ अन्तर्मन में एक विद्युत् विचार प्रवाहित होता रहा कि वैज्ञानिक अध्यात्म के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना है। इसी प्रयास में पिछले सालों में देवसंस्कृति विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक अध्यात्म विभाग की स्थापना की गयी। और वैज्ञानिक अध्यात्म को एक अनिवार्य विषय के रूप में प्रत्येक पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया।

इसके अगले चरण के रूप में निश्चय किया गया कि राष्ट्र व विश्व के नवनिहालों, किशोरों, युवाओं एवं उनके अभिभावकों को वैज्ञानिक अध्यात्म जटिल दर्शन या दुरूह विज्ञान के रूप में नहीं, बल्कि प्रेरक, रोचक, उद्बोधक कथाओं के रूप में बताया जाय। ऐसी कथाएँ जिन्हें अपनी नयी पीढ़ी रुचिपूर्वक सुन सके और उनके अभिभावक उन्हें रुचिपूर्वक सुना सकें। अभी तक अध्यात्म को संस्कृत की पुराण कथाओं, हिन्दी की लोक कथाओं के रूप में कहने के प्रयास हुए हैं। विज्ञान की कथाएँ भी रोचक ढंग से कही गयी हैं। परन्तु इनकी सभी श्रेष्ठताओं का समन्वयन कर वैज्ञानिक अध्यात्म की कथाएँ नहीं कही गयी। सम्भवत: इस तरह का यह पहला प्रयास है। इसके लिए इस तरह की प्रामाणिक घटनाओं की छान-बीन करनी पड़ी, जिनका सम्बन्ध धरती के पूर्वी एवं पश्चिमी छोरों के विभिन्न युगों से था। फिर इन घटनाओं को युगऋषि गुरुदेव के विचारों के प्रकाश में पिरोकर रोचक कथाओं में कहा गया।

मेरे लिए यह सर्वथा नवीन व कठिन कार्य था। इस कठिनता का एक कारण समय का नितान्त अभाव भी था। सर्वप्रथम अपना नितान्त निजी साधनामय जीवन, इसके साथ मिशन एवं विश्वविद्यालय के गुरुतर दायित्व तथा पर्याप्त श्रम एवं समय लेने वाली देश और विदेश की यात्राएँ। फिर भी समर्पण की भूमि पर अंकुरित हुए संकल्प को तो पूर्ण होना ही था। इसी का परिणाम रहा कि अपनी मार्गदर्शक गुरुसत्ता की प्रेरणा से प्रज्ज्वलित ये **वैज्ञानिक अध्यात्म के क्रान्ति दीप** इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। गुरुपूर्णिमा के अवसर पर यह प्रकाशन कुछ ऐसा है जैसे कि स्वयं युगऋषि गुरुदेव मानवता की नयी पीढ़ी एवं उनके अभिभावकों को वैज्ञानिक अध्यात्म के मन्त्र की सामूहिक दीक्षा दे रहे हैं। और अपनी स्वयं की अनुभूति कहती है कि यह पुस्तक गुरुपर्व पर उनके इस अकिंचन शिष्य का, उनके ही सिखाए गए ज्ञान का उन्हीं के श्री चरणों में श्रद्धासिक्त समर्पण है।

गुरुपूर्णिमा — **डॉ. प्रणव पण्ड्या**

७ जुलाई २००९

1

वैज्ञानिक अध्यात्म

वैज्ञानिक अध्यात्म में वैज्ञानिक जीवन दृष्टि एवं आध्यात्मिक जीवन मूल्यों का सुखद समन्वय है। वैज्ञानिक जीवन दृष्टि में पूर्वाग्रहों, मूढ़ताओं एवं भ्रामक मान्यताओं का कोई स्थान नहीं है। यहाँ तो तर्क संगत, औचित्यनिष्ठ, उद्देश्यपूर्ण व सत्यान्वेषी जिज्ञासु भाव ही सम्मानित होते हैं। इसमें रूढ़ियाँ नहीं प्रायोगिक प्रक्रियाओं के परिणाम ही प्रामाणिक माने जाते हैं। सूत्र वाक्य में कहें तो वैज्ञानिक जीवन दृष्टि में परम्पराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व मिलता है। वेदों के ऋषिगण इसी का 'सत्यमेव जयते' के रूप में उद्घोष करते हैं।

वैज्ञानिक जीवन दृष्टि का यह सत्य-आध्यात्मिक जीवन मूल्यों की परिष्कृत संवेदना से मिलकर पूर्ण होता है। परिष्कृत संवेदना ही वह निर्मल स्रोत है, जिससे समस्त सद्गुण जन्मते और उपजते हैं। जहाँ परिष्कृत संवेदना का अभाव है, वहाँ सद्गुणों का भी सर्वथा अभाव होगा। कई बार भ्रान्तिवश सत्य एवं संवेदना को विरोधी मान लिया जाता है। जो इन्हें विरोधी समझते हैं, वही विज्ञान और अध्यात्म

के विरोधी होने की बात कहते हैं। जबकि सत्य और संवेदना- विज्ञान और अध्यात्म की भांति परस्पर विरोधी नहीं पूरक हैं। सत्य संवेदना को संकल्पनिष्ठ बनाता है और संवेदना सत्य को भाव निष्ठ-जीवन निष्ठ बनाती है।

वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रयोगों की निरन्तरता जीवन को सत्यान्वेषी किन्तु संवेदनशील बनाए रखती है। इसके द्वारा मनुष्य में वैज्ञानिक प्रतिभा एवं सन्त की संवेदना का कुशल समायोजन व सन्तुलन बन पड़ता है। इसका विस्तार यदि समाज व्यापी होगा तो समाज धर्म विशेष, मत विशेष व पंथ विशेष के प्रति हठी एवं आग्रही नहीं होगा। यहाँ सम्पूर्ण विश्व के सभी मत एवं सभी पंथ की समस्त श्रेष्ठताएँ सहज ही सम्मानित होंगी। वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रयोगों के सभी परिणाम समाज में आध्यात्मिक मानवतावाद की प्रतिष्ठा करेंगे। इसी सत्य का साक्षात्कार युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने युगक्रान्ति करने वाले प्रकाश दीप के रूप में अपनी चेतना के समाधि शिखरों पर आसीन होकर किया था। इससे ही प्रज्जवलित अनगिन क्रान्ति दीप युग की भवितव्यता को उज्ज्वल स्वरूप देने वाले हैं।

⌘

2

ऋषियों का विज्ञान है यह

वैज्ञानिक अध्यात्म के मन्त्रद्रष्टा युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य की चेतना-चिन्तन में निमज्जित थी। यह सन् १९४६ ई. के सितम्बर माह की सुबह थी। अभी एक दिन पहले ही उनका शारीरिक जन्म दिन था। इस जन्म दिवस वाले दिन ब्रह्म बेला में उन्हें समाधि के शिखरों पर कुछ संकेत-कुछ सन्देश प्राप्त हुए थे। यूं तो अपनी मार्गदर्शक सत्ता के प्रथम मिलन वाले ब्रह्ममुहूर्त वसंत पर्व १९२६ से प्रत्येक दिन का ब्रह्ममुहूर्त उनके लिए विशिष्ट होता आया था। पर इस दिन इसकी विशिष्टता कुछ खास विशेष थी। हिमालय की ऋषि सत्ताओं एवं सद्गुरुदेव स्वामी सर्वेश्वरानन्द की सूक्ष्म अनुभूतियों की शृंखला के साथ उनके चिदाकाश में- 'वैज्ञानिक अध्यात्म' के दो शब्द महामन्त्र की तरह प्रकाशित और ध्वनित हुए थे। यह वैज्ञानिक अध्यात्म के महामन्त्र का प्रथम साक्षात्कार था। ऐसा साक्षात्कार कराने वाली दिव्य अनुभूतियों के बाद हमेशा ही उनके अन्तर्जगत् एवं बाह्य जगत् में घटनाक्रमों का एक क्रम चल पड़ता था।

अन्तर्जगत् के घटनाक्रम तो उन्हें उस दिन से ही अनुभव हो रहे थे। आज बाह्य जगत् में भी उस पत्र के रूप में उन्हें कुछ संकेत मिल रहे थे, जो इस समय उनके हाथों में था। और जिसने उनकी चेतना को चिन्तन में निमग्न कर दिया था। यह पत्र रामनारायण केडिया का था। केडिया जी पिछले तीन-चार सालों से अखण्ड ज्योति परिवार के सक्रिय सदस्य थे। आचार्य जी से भी उनका गहरा भावनात्मक लगाव था। उनसे मिलने के लिए वर्ष में दो-तीन बार उनका अखण्ड ज्योति कार्यालय मथुरा आना होता रहता था। जहाँ तक पत्र की बात है तो सप्ताह में एक पत्र अवश्य लिखते थे। आज का पत्र भी उनके नियमित पत्रों की कड़ी में से एक था। इस पत्र में उन्होंने लिखा था कि पिछले दिनों उनका शान्ति निकेतन जाना हुआ। केडिया जी कलकत्ता में रहते थे। शान्ति निकेतन उनके निवास से बहुत दूर नहीं था। पहले भी वह कई बार शान्ति निकेतन जा चुके थे। इस बार की विशेष बात उनकी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से भेंट थी।

द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान, समालोचक एवं साहित्यकार थे। सन् १९३० ई. से वह शान्ति निकेतन में हिन्दी प्राध्यापक के रूप में कार्यरत थे। हालांकि वह रहने वाले बलिया (उ.प्र.) के थे। अपनी शिक्षा उन्होंने वाराणसी में पूर्ण की थी। पर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के प्रेमपाश ने उन्हें शान्ति निकेतन से बांध रखा था। अब जबकि विश्वकवि इस धरती पर नहीं रहे, उनके पुत्र रथीबाबू के आग्रह के कारण वह यहाँ थे। यद्यपि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सहित अनेकों ख्याति प्राप्त संस्थाओं से उन्हें आमंत्रण आ रहे थे, परन्तु शान्ति निकेतन उन्हें प्रिय था। इन्हीं आचार्य द्विवेदी जी से केडिया जी ने मुलाकात की थी और उन्हें अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिका के पिछले अंक सौंपते हुए युगऋषि आचार्य श्री का परिचय दिया था। अखण्ड ज्योति के उद्देश्य, लेखन शैली की नवीनता, भाषा की प्राञ्जलता और अध्यात्म विषय के सर्वथा नवीन प्रस्तुतीकरण ने द्विवेदी जी को बहुत प्रभावित किया था। उन्होंने रामनारायण केडिया से कहा था कि कभी अखण्ड ज्योति पत्रिका के सम्पादक को यहाँ बुलाओ। मैं भी उनसे भेंट करना चाहता हूँ।

अपने पत्र में केडिया जी ने इन्हीं सब बातों को विस्तार से लिखा था। उनके लिखे हुए इसी विवरण को युगऋषि आचार्य श्री पढ़ रहे थे। यह पत्र पढ़ते हुए पत्र में जो लिखा था, उसके अलावा कुछ विशेष आचार्य श्री की चिन्तन-चेतना में स्पन्दित हुआ। उन्होंने अखण्ड ज्योति कार्यालय के एक व्यक्ति को बुलाकर केडिया जी को अपने कलकत्ता आने का टेलीग्राम करने को कहा। और स्वयं आनन-फानन कलकत्ता की यात्रा की तैयारियाँ करने में जुट गए। यद्यपि वह इसके पहले कई बार कलकत्ता एवं शान्ति निकेतन जा चुके थे। पिछली बार की शान्ति निकेतन यात्रा में उनकी मुलाकात विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर से हुई थी। तब रवीन्द्र बाबू काफी बीमार चल रहे थे। परन्तु इसे संयोग कहें या दैवयोग उस समय हजारी प्रसाद द्विवेदी कहीं बाहर गए हुए थे।

इस बार द्विवेदी जी ने स्वयं भेंट-मुलाकात के लिए आग्रह किया था। उनके आग्रह एवं दैवी विधान से प्रेरित हो वह दो दिन की यात्रा पूरी करके केडिया जी के निवास पर पहुँच गए। केडिया जी को तो ऐसा लगा जैसे कि विदुर के घर श्रीकृष्ण आ पहुँचे हों। उन्होंने बड़े भाव विह्वल मन से आतिथ्य किया। और फिर उस दिन शाम को शान्ति निकेतन पहुँचने का कार्यक्रम बना लिया। द्विवेदी जी को उनके आगमन की पूर्व सूचना थी। इन दिनों वह बाणभट्ट की आत्मकथा लिख रहे थे। यह कार्य लगभग समाप्त हो चुका था। रामनारायण केडिया जब युगऋषि आचार्य श्री को लेकर उनसे मिलने पहुँचे तो वह अपने मकान के बाहर वाले उद्यान में टहल रहे थे। उनके साथ आचार्य क्षितिमोहन सेन एवं विधुशेखर शास्त्री भी थे। द्विवेदी जी ने ज्यों ही युगऋषि आचार्य श्री को देखा तो देखते रह गए। गौर वर्ण, तेज पूर्ण नेत्र, तपोदीप्त मुख, उन्होंने संक्षेप में उनका परिचय आचार्य क्षितिमोहन सेन एवं विधुशेखर शास्त्री से कराया।

इसी के साथ उन्होंने आकाश की ओर एक दृष्टि डाली और कहा- बड़ा सुन्दर सुयोग है जो आज आप पधारे। अभी थोड़ी देर में यहाँ व्याख्यान भवन में प्रो.

सी.वी. रमन का व्याख्यान होने वाला है। वह आज ही यहाँ पधारे हैं। जब से प्रो. रमन को भौतिकी का नोबुल पुरस्कार मिला है उनसे सभी सुपरिचित हो गए हैं। आज की विशेष बात यह है कि वह अपना आज का व्याख्यान भौतिक विज्ञान या रमन प्रभाव पर नहीं, बल्कि विज्ञान को अध्यात्म क़ी आवश्यकता पर देने वाले हैं। द्विवेदी जी की ये बातें सुनकर युगऋषि आचार्य बोले कुछ नहीं बस हल्के से मुस्करा कर उनके साथ चल दिए। थोड़ी देर बाद वह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य क्षितिमोहन सेन, विधुशेखर शास्त्री एवं रामनारायण केडिया के साथ सभागार पहुँच गए। जहाँ व्याख्यान थोड़ी ही देर पहले शुरू हो चुका था।

प्रो. सी.वी. रमन लम्बा काला गाउन पहने खड़े थे और बोल रहे थे– बीसवीं सदी विज्ञान की सदी बन चुकी है। कोई देश इसके चमत्कारों के प्रसार से अछूता नहीं है। जो आज हैं भी वे कल नहीं रहेंगे। परन्तु विज्ञान का प्रयोग मानव हित में हो, यह चुनौती न केवल समूचे विज्ञान जगत् के सामने, बल्कि समूची मानवता के सामने है। वैज्ञानिकता, विज्ञान एवं वैज्ञानिकों को हृदयहीन व संवेदनहीन नहीं होना चाहिए। वे हृदयवान हों, संवेदनशील हों इसके लिए उन्हें अध्यात्म का सहचर्य चाहिए। प्रो. सी.वी. रमन का प्रत्येक शब्द दिल में उतरने वाला था। थोड़ी देर बाद ज़ब उनका व्याख्यान समाप्त हो गया तो द्विवेदी जी ने आचार्य श्री से आग्रह किया चलिए आपको प्रो. रमन से मिलाते हैं। प्रो. रमन पहले भी कई बार शान्ति निकेतन आ चुके थे, इसलिए द्विवेदी जी से उनका सहज परिचय था। इस समय वह अतिथि भवन में ठहरे थे।

आचार्य द्विवेदी इन सभी के साथ उनके कक्ष में पहुँचे। इस समय वह टहल रहे थे। विश्वकवि के सुपुत्र रथीबाबू उनके कक्ष से बाहर निकल रहे थे। अभिवादन के आदान-प्रदान एवं संक्षिप्त परिचय के साथ सभी ने प्रो. रमन को उनकी उत्तम वक्तृता के लिए आभार दिया। इस पर वह बोले– बात आभार की नहीं, बात क्रियान्वयन की है। इस पर आचार्य श्री बोले– "क्रियान्वयन तो

अध्यात्म क्षेत्र में भी होना है। उसे भी विज्ञान का सहचर्य चाहिए। विज्ञान के प्रयोग ही उसे मूढ़ताओं, भ्रान्तियों एवं अन्ध परम्पराओं से मुक्त करेंगे।" तरूण, तपोनिष्ठ आचार्य श्री की इस बात का सभी ने समवेत समर्थन किया। और तब प्रो. रमन ने कहा- "बीसवीं सदी भले ही विज्ञान की सदी हो, पर इक्कीसवीं सदी वैज्ञानिक अध्यात्म की सदी होगी।" **'वैज्ञानिक अध्यात्म'** इसी का साक्षात्कार तो तरूण तपोनिष्ठ आचार्य श्री ने अपने समाधि शिखरों पर किया था। उस दिन इस पर सभी मनीषियों की व्यापक परिचर्चा हुई। और वहाँ से वापस आने पर वैज्ञानिक अध्यात्म के मन्त्रद्रष्टा आचार्य श्री ने जनवरी सन् १९४७ ई. में वैज्ञानिक अध्यात्म पर एक विशेषांक प्रकाशित किया। जिसके प्रथम पृष्ठ की अन्तिम पंक्ति में लिखा- **अखण्ड ज्योति के पाठकों! स्मरण रखो, सबसे पहले जिसे पढ़ने और हृदयंगम करने की आवश्यकता है, वह वैज्ञानिक अध्यात्मवाद ही है। यही ऋषियों का विज्ञान है।**

3

वैज्ञानिक अनुसन्धान की अविराम यात्रा

'ऋषियों के विज्ञान में प्रकृति की शक्ति एवं परमेश्वर के सत्य की अभिव्यक्ति है। इसके आयाम अनगिन हैं और प्रत्येक आयाम एक-दूसरे में समाये हैं। इनमें अभिन्नता है, अनन्तता है और नवीनता भी। यही वजह है कि ऋषियों के वैज्ञानिक प्रयोग कभी थमे नहीं, कभी मन्द नहीं पड़े। यह धारा सदा से अविरल रही है और सदा अविरल बनी रहेगी। ऋषियों के विज्ञान में अनुसन्धान अविराम है।' ऐसा कहते हुए महर्षि अंगिरस ने उपस्थित महर्षियों, मनीषियों व अध्ययनरत ब्रह्मचारियों की ओर देखा। यह विशेष अनुसन्धान अधिवेशन था, जिसे हिमालय की तलहटी में सरस्वती के तीर पर आयोजित किया गया था। इसमें सम्पूर्ण आर्यावर्त के मन्त्रद्रष्टा महर्षि एवं उनके शिष्यगण पधारे थे। यह आयोजन स्थल रमणीय, सुमनोहर व सुविस्तीर्ण था।

हिमालय के श्वेत-रजत शिखरों की छाया एवं सरस्वती के जलकणों से सिंचित यह भू-भाग सब भांति अलौकिक था। गर्वोन्मत्त माथा किए, सजग सचेष्ट

प्रहरी की भांति वृक्षों की कतारें देखते ही मन को बांध लेती थी। भूमि पर मखमली घास की प्राकृतिक चादर बिछी थी। स्थान-स्थान पर पुष्पों से लदे पादप विहंस कर अपनी अनोखी सुरभि लुटा रहे थे। पास में ही सघन अरण्य था, जहाँ से यदा-कदा वनराज की गर्जना सुनायी दे जाती थी। अधिवेशन स्थल पर कस्तूरी मृग बेरोक-टोक घूमकर अपनी सुगन्धि वितरित कर रहे थे। यह सम्पूर्ण आयोजन महर्षि अंगिरस की तपस्थली में हो रहा था। ये सम्पूर्ण दृश्यावलियां इसी का हिस्सा थी। उन्होंने ऋषियों के विज्ञान की अनुसन्धान यात्रा पर गहन परिचर्चा के लिए यह आयोजन किया था।

इस शोध अधिवेशन में यूं तो भाग लेने वालों की संख्या सहस्राधिक थी। परन्तु बृहस्पति पुत्र भारद्वाज, ऋषि प्रगाथ, मुनिश्रेष्ठ वाम्बरीश, महर्षि मेधातिथि कण्व एवं स्वयं को प्रकृति पुत्र कहने वाले वसुश्रुत अपनी हाल की ही शोध उपलब्धियों के कारण विशेष आकर्षण बने हुए थे। इन्होंने ऋषियों के विज्ञान की प्रकृति पर, इसकी विशिष्टताओं पर खास प्रयास किए थे। महर्षि अंगिरस ने अपने कथन की समाप्ति करते हुए इन सभी को एक साथ सभामंच पर आमंत्रित करते हुए परिचर्चा प्रारम्भ करने का अनुरोध किया। इसे स्वीकारते हुए बृहस्पति पुत्र भारद्वाज ने कहा- ऋषियों का विज्ञान जड़वादियों के विज्ञान की तुलना में भिन्न एवं विशेष इसलिए है, क्योंकि जड़वादियों के वैज्ञानिक अनुसंधान जड़ पदार्थ तक ही सीमित हैं। जबकि ऋषियों के वैज्ञानिक प्रयोगों एवं अनुसन्धान की कोई सीमा नहीं है। इसके अनन्त विस्तार में प्रकृति में होने वाले समस्त परिवर्तन एवं परमेश्वर का शाश्वत् स्वरूप समाहित है।

ऋषि भारद्वाज से सहमति जताते हुए ऋषि प्रगाथ ने कहा- जो अनुसन्धान किसी आग्रह, मत अथवा पथ से बंधे हो, उन्हें न सत्यान्वेषी कहा जा सकता है और न ही वैज्ञानिक। आग्रह के अवरोध वैज्ञानिक वृत्ति को अवैज्ञानिक बना देते हैं। जड़वादियों की प्रकृति ऐसी ही निषेधात्मक है। उन्होंने स्वयं को जड़ पदार्थ एवं

इसके ऊर्जा प्रवाहों के आरोह-अवरोह में कैद कर रखा है। इसके भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को उन्होंने सब कुछ मान रखा है। जबकि वह भूल जाते हैं कि प्रकृति के विस्तार में और भी बहुत कुछ है। ऋषि प्रगाथ की वाणी मधुर थी, वह जो कह रहे थे, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता था।

उनकी वाणी के तनिक थमते ही मुनिश्रेष्ठ वाम्बरीश कहने लगे- दरअसल जिसे जड़वादी पदार्थ कहते हैं, वह प्रकृति के तमोगुण की एक साधारण सी अभिव्यक्ति है। त्रिगुणमयी प्रकृति के तमोगुण की अभिव्यक्ति पदार्थ के रूप में होती है, रजोगुण इसमें प्राण या जीवन की सक्रियता का संचार करता है। और सत्वगुण से इसमें आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए वैज्ञानिक शोध अनुसन्धान प्रयासों में जड़ पदार्थ एवं उनकी भौतिक ऊर्जाएँ, प्राण तत्त्व-प्राण ऊर्जाएँ, मनस तत्त्व-मानसिक-भावनात्मक ऊर्जाएँ एवं अन्ततोगत्वा आत्मतत्त्व व आध्यात्मिक ऊर्जाएँ इन सभी का समावेश होना चाहिए।

ऋषियों के विज्ञान में यही सम्पूर्णता-समग्रता है। हंसते हुए प्रकृति पुत्र वसुश्रुत ने मुनिश्रेष्ठ वाम्बरीश के कथन को पूरा किया। और उन्होंने आगे कहा कि जड़वादियों की भूल सिर्फ इतनी है कि वे एकांगी हैं और उन्होंने अपनी एकांगिकता को ही सम्पूर्णता मान रखा है। इसी वजह से वह सत्य से, सत्त्व से वंचित हैं। इसके पीछे उनकी नकारात्मक सोच है, जो उन्हें प्रकृति के अनगिन आयामों और इनमें चेतनता का संचार करने वाले परमेश्वर को अनुभव नहीं करने देती। जिस दिन भी वह अपने निषेध भाव एवं आग्रह के अवरोधों को हटा लेंगे वे भी सत्य के अनगिन आयामों का साक्षात्कार करने लगेंगे।

ऋषियों के विज्ञान का यही सूत्र सत्य है- यहाँ किसी भी निषेध व नकार का कोई स्थान नहीं है। आग्रह के अवरोध इसकी अनुसन्धान यात्रा को किन्हीं सीमा रेखाओं में नहीं बांधते। शोध प्रयासों में सकारात्मक निरन्तरता ऋषियों के विज्ञान का

ध्येय वाक्य है। यही वजह है कि इस महान् विज्ञान की उपलब्धियों का प्रयोग भी सकारात्मक सृजन कार्यों में होता है। जिनकी सोच में निषेध भाव होता है, वे अपनी शोध उपलब्धियों का प्रयोग भी विध्वंस और विघटन में करते हैं। कुशल आयुर्विज्ञानी विष का भी औषधीय उपयोग कर लेते हैं, जबकि कुटिल, कुबुद्धि वाले औषधि का भी मारक प्रयोग कर डालते हैं। ऋषियों के विज्ञान में केवल सत्य की ही अभिव्यक्ति नहीं है, इसमें शिवम् एवं सुन्दरम् के सुयोग भी जुड़े हैं।

महर्षि अंगिरस मौन बैठे हुए इस सुखद परिचर्चा का आनन्द ले रहे थे। इन महर्षियों की बातें सुनकर वह बीच-बीच में मुस्करा उठते थे। उन्हें अपना यह आयोजन सार्थक लग रहा था। उन्होंने मनस्वी महर्षि मेधातिथि कण्व की ओर देखते हुए आग्रह किया, आप भी कुछ कहें ऋषिश्रेष्ठ। मनस्वी मेधातिथि अभी तक मौन बैठे थे। उन्होंने दृश्य व अदृश्य के सम्बन्धों पर पर्याप्त शोध कार्य किया था। महर्षि अंगिरस के आग्रह पर वह मुखर हुए और बोले- जिस तरह धरा पर पदार्थ, वनस्पति एवं प्राणिवर्ग के विविध रूप हैं, उसी तरह चैतन्य ऊर्जाओं के अन्य आयाम- देव, पितर, यक्ष आदि भी हैं। धरा मण्डल केवल अपने ही ऊर्जाप्रवाहों से प्रवर्तित व संचालित नहीं होता। अन्य लोकों के जड़ व चैतन्य ऊर्जा प्रवाह भी इसे प्रेरित, प्रभावित व प्रवर्तित करते हैं। दृश्य व अदृश्य के इन सम्बन्धों का अध्ययन भी ऋषियों के विज्ञान का महत्त्वपूर्ण विभाग है। और हो भी क्यों न? ऋषियों के विज्ञान का तो प्रयोजन ही है प्रकृति की शक्ति एवं परमेश्वर के सत्य की सार्थक अभिव्यक्ति। प्रकृति एवं सृष्टि के सभी आयामों से सकारात्मक व सहयोगात्मक सम्बन्ध। तभी तो वेदवाणी कहती है- **विज्ञानं यज्ञ तनुते। कर्माणितनुतेऽपि च**। विज्ञान ही यज्ञों और कर्मों की वृद्धि करता है। ऋषियों के विज्ञान के ये संवेदन आधुनिक विज्ञान में भी आध्यात्मिक संचेतना का संचार करने में समर्थ हैं।

⌘

4

परोक्ष संपर्क ने जन्म दिया ऊर्जा के क्वाण्टम सिद्धान्त को

'वैज्ञानिकों का अध्यात्म उनमें अनुसन्धान की नयी चेतना विकसित करता है। आध्यात्मिक पवित्रता के साथ किए जाने वाले वैज्ञानिक प्रयोग आत्म सन्तोष एवं लोकहित के दोहरे हित पूरा करते हैं।' इन वाक्यों ने मैक्स प्लैंक को स्वप्न में भी सचेत एवं सचेष्ट कर दिया। उन्हें लगा ही नहीं कि वह कोई स्वप्न देख रहे हैं। सब कुछ प्रसन्नतादायक एवं होशपूर्ण लग रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे कि किसी नए आलोक लोक में पहुँच गए हों। यहाँ सब कुछ प्रकाशपूर्ण था। शीतल व सुखद प्रकाश सब तरफ फैला हुआ था। प्रत्येक चीज यहाँ प्रकाश किरणों से बनी थी। सब कुछ अद्‌भुत एवं आश्चर्यजनक किन्तु अतीव सुखप्रद। यहीं पर उनने स्वयं को और अपने दादाजी को देखा। वह बड़े प्रसन्न व प्रेमपूर्ण लग रहे थे। उनकी देह भी श्वेत रंग की प्रकाश किरणों से बनी व बुनी थी। वे ही उन्हें समझा रहे थे कि वैज्ञानिक होने का अर्थ यह नहीं है कि आध्यात्मिक भावों से स्वयं को पृथक् कर लो।

मैक्स प्लैंक पिछले कुछ दिनों से काफी चिन्तित एवं निराश थे। एक गहरी थकान ने उन्हें घेर लिया था। उन्हें ऐसा लग रहा था कि किसी घने काले-भूरे

बादल ने उनकी बौद्धिक चेतना को घेर लिया हो। कहीं कोई मार्ग न तो दिख रहा था और न मिल रहा था। सब कुछ तमसावृत्त था। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। वह पर्याप्त बुद्धिशाली थे। घर-परिवार अथवा जीवन की जटिल समस्याएँ हों या फिर भौतिकी व गणितशास्त्र की गूढ़ उलझनें; सभी का समाधान वह चुटकियों में कर दिया करते थे। बचपन से ही उन्हें प्रतिभा का दैवी वरदान मिला था। उनकी प्रतिभा को निखारने में परिवार की पारम्परिक बौद्धिक पृष्ठभूमि भी बहुत काम आयी। उनके परदादा एवं दादा दोनों ही गाटिन्जेन, जर्मनी में धर्मविज्ञान के प्रोफेसर रहे। पिता जर्मनी के ही केल एवं म्यूनिख शहरों में कानून के प्रोफेसर रहे। उनके चाचा सम्मानित जज थे। उनका स्वयं का जन्म भी केल शहर में हुआ था।

यहाँ उन्होंने काफी समय बिताने के बाद म्यूनिख विश्वविद्यालय से इक्कीस वर्ष की आयु में भौतिक शास्त्र में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। डाक्टरेट कर लेने के बाद भी उनकी अनुसन्धान वृत्ति कम नहीं हुई। और इसके एक साल बाद ही वह अपने मौलिक शोध प्रयासों में लग गए। तब से अब तक उन्हें शोध कार्य करते हुए लगभग बीस साल होने को आए थे। परन्तु कोई सार्थक निष्कर्ष नहीं निकल सका था। तर्क व गणित के समीकरण, प्रयोगशाला के उपकरण मिलकर भी उन्हें कोई सिद्धान्त संरचना नहीं दे पा रहे थे। उनकी बौद्धिक पारगामिता भी उनको समस्याओं के पार नहीं ले जा पा रही थी। आज तो वह भी सोचने लगे थे कि क्या बीस सालों का श्रम यूं ही निरर्थक चला जाएगा।

दिन ढलते-ढलते वैचारिक द्वन्द्वों ने उन्हें काफी परेशान कर दिया था। इस परेशानी से निजात पाने के लिए उन्होंने अपने प्रिय संगीत का सहारा लिया। संगीत का शौक उन्हें बचपन से था। प्यानो, हारमोनियम तो वह बड़ी कुशलता से बजाते थे। कण्ठ भी उनका मधुर था। गायन एवं वादन में उनकी इस प्रवीणता को देखकर उनके कई साथी यह कहने लगे थे कि उन्हें संगीत को ही अपना कैरियर बनाना चाहिए था। पर उन्हें भौतिक शास्त्र प्रिय था। पदार्थ एवं सृष्टि की रहस्यमय

गुत्थियों को सुलझाने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता था। उनके दादाजी यदा-कदा उनसे इस अभिरुचि को थोड़ा और परिमार्जित करने को कहते। वह उन्हें समझाते- मैक्स! सृष्टि-स्रष्टा से अलग नहीं है। स्रष्टा की ऊर्जा से ही सृष्टि संचालित है। यहाँ तक निर्जीव भौतिक पदार्थों के कणों में भी वह स्पन्दित है।

दादा जी की इन बातों को उन्होंने कभी बहुत गम्भीरता से नहीं लिया था। पर आज उन्हें अपने दादाजी बहुत याद आए। प्यानों पर जब वह संगीत की धुन बजा रहे थे- तब भी कहीं अन्तर्मन में दादाजी की स्मृतियाँ समस्वरित हो रही थी। उनके पिता जोहन जुलियस विल्हेम प्लैंक बताया करते थे कि मैक्स तुम्हारे दादा जी केवल धर्म विज्ञान पढ़ाते ही नहीं थे, उनका स्वयं का जीवन भी धार्मिक-अनुभूतियों से ओत-प्रोत था। पिताजी की बातें, अपनी स्वयं की यादें और सामने की दीवार पर सुनहरे फ्रेम में मढ़ा हुआ दादा जी का चित्र, इन्हीं को मन में संजाये वह सो गए थे। शयनकाल में उनकी चेतना अनजाने ही अदृश्य से जुड़ गयी थी। स्वप्न में उन्हें ऐसा लगा- जैसे कि वह अत्यन्त सुरम्य एवं रमणीय स्थान में प्रकाशपूर्ण लहरों वाली नदी के किनारे हैं। और दादाजी उनसे कह रहे हैं- मैक्स! पदार्थ हो या प्रकाश प्रत्येक की वास्तविक प्रकृति ऊर्जा है। जिस तरह पदार्थ सूक्ष्म कणों से बना है ठीक उसी तरह से प्रकाश भी सूक्ष्म ऊर्जा कणों से बना है। ये ऊर्जाकण निश्चित क्वांटिटी में प्रवाहित होते रहते हैं।

न जाने क्या था इस स्वप्न में, दादा जी की उपस्थिति और उनकी बातों में, मैक्स प्लैंक की समूची थकान जाती रही। उसकी बौद्धिक चेतना को तमसावृत्त करने वाले घने काले-भूरे बादल छिन्न-भिन्न हो गए। उसने स्वयं के अन्तर्भावों में एक नए प्रकाश को अवतरित होते हुए अनुभव किया। यह उनकी चेतना में नया सूर्योदय था। इस सूर्योदय ने उन्हें सूर्योदय के पहले ही जगा दिया। वह जा पहुँचे अपनी प्रयोगशाला में और कार्य में जुट गए। जाड़े के दिन थे। सन् १९०० के अक्टूबर का महीना था। कक्ष में अंगीठी जल रही थी। काम करने वाली टेबल पर

प्रकाश भी प्रदीप्त था। उन्होंने उस ओर ध्यान से देखा और देखते रह गए, सचमुच ही ऊष्मा व प्रकाश-ऊर्जा कणों के रूप में चहुँ ओर विकरित हो रहा है। ये ऊर्जाकण एक निश्चित क्वांटिटी में बह रहे हैं, बिखर रहे हैं। इसके लिए उनकी अन्तर्चेतना में ध्वनित हुआ 'क्वान्टा'।

और उसी क्षण ऊर्जा के क्वांटम सिद्धान्त की रचना हुई। मैक्स प्लैंक को स्वप्न में हुए आध्यात्मिक अनुभव ने सचमुच ही उन्हें अनुसन्धान की नयी चेतना दी। इस अद्भुत अनुभव को उन्होंने अपने मित्र आटोहॉन एवं लाइस मेटनर को बताते हुए कहा- पदार्थ की भांति ऊर्जाओं के भी सूक्ष्म लोक हैं। दृश्य की ही भांति अदृश्य का भी अस्तित्त्व है। तर्कबुद्धि एवं गणितीय समीकरणों से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण अन्तर्प्रज्ञा है। यथार्थ बोध यहीं अंकुरित होता है। तर्क से उसकी केवल अभिव्यक्ति होती है। इस घटना के कुछ वर्षों बाद उन्होंने अपनी जुड़वा बेटियों ईमा एवं ग्रेही को बताते हुए कहा- बेटी! तुम्हारे परदादा एवं मेरे दादा जी से मेरा अदृश्य सम्पर्क प्राय: बना रहता है।

सन् १९१९ में जब उन्हें अपने शोधकार्य के लिए नोबुल पुरस्कार मिला। उन्होंने उस अवसर पर कहा- वैज्ञानिक प्रयोगों के साथ आध्यात्मिक पवित्रता का जुड़े रहना अनिवार्य है। इसी के साथ उन्होंने यह भी कहा-''विज्ञान यदि मानवता के अहित की दिशा में अपने कदम बढ़ाता है तो वह विज्ञान ही नहीं है। विज्ञान हमेशा लोकहितकारी बना रहे, इसके लिए उसे आध्यात्मिक संवेदनों से स्पन्दित होना चाहिए। यही तो वैज्ञानिक अध्यात्म है, जिसके ऐतिहासिक परिदृश्य पर विचार किया जाना चाहिए।''

⌘

5

रहस्यमय दिव्य हिमालय, जहाँ जन्मा अध्यात्म विज्ञान

वैज्ञानिक अध्यात्म के ऐतिहासिक परिदृश्य की जिज्ञासा ने उन्हें रोमांचित कर दिया। उनकी नीली आँखों की चमक थोड़ा और गहरी हुई। उनके गुलाबी होंठ मुस्करा उठे। उन्होंने आहिस्ते से पलकें झपकाईं, हल्के से अंगड़ाई ली और उठ खड़ी हुई। धीमे कदमों से उस हालनुमा कमरे का एक चक्कर लगाया और एक बड़ी अलमारी के पास खड़ी हो गयी। उस कक्ष में यह और इस जैसी कई अल्मारियाँ थी, जो सबकी सब धर्म, अध्यात्म, दर्शन व विज्ञान विषयक पुस्तकों से भरी हुई थी। इन पुस्तकों का संकलन उनके दृष्टिकोण, अभिरूचि एवं जिज्ञासु भाव को दर्शाता था। अभी वह अलमारी से कोई पुस्तक निकाल पाती इतने में दरवाजे पर आहट हुई, वह लगभग चौंकते हुए पीछे मुड़ी। द्वार पर उनके पति फिलिप नील खड़े थे। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा और मुस्करा पड़े। ये पति-पत्नी अपनी भिन्न रूचियों, प्राय: विरोधाभासी दृष्टिकोण के बावजूद एक-दूसरे को बहुत प्यार करते थे। उनमें प्रगाढ़ आत्मीय सम्बन्ध था।

फिलिप ने उनके हाथ में हिमालय के रहस्यों पर एक किताब देखी और हँस पड़े। फिर कहने लगे केवल पढ़ने तक ही बात सीमित है या फिर से हिमालय जाने की ठान ली है। वह भी हँस कर बोली- सोचा तो कुछ ऐसा ही है। फिलिप अपनी पत्नी से मतभिन्नता के बावजूद उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति, गहरे आध्यात्मिक भाव एवं प्रखर वैज्ञानिक अभिवृत्ति के प्रशंसक थे। फ्रांस के इस खूबसूरत शहर में रहते हुए वह अठारह वर्ष की आयु में ही अकेली इंग्लैण्ड, स्विटजरलैण्ड व स्पेन घूम चुकी थी। उनका जीवन काल सन् १८६८ से १९६९ तक पूरे १०१ वर्ष का रहा। पिछले कुछ वर्षों में उन्होंने लंका और भारत की यात्राएँ भी की थी। श्रीमती नील दुर्गम हिमालय की यात्रा करने वाली पहली यूरोपियन महिला थी। हिमालय के लिए उनके मन में गहरी आस्था और आकर्षण था। उन्होंने वैदिक साहित्य व बौद्ध साहित्य का पर्याप्त अध्ययन किया था। इन दिनों वह उपनिषदों का अध्ययन कर रही थी। यदा-कदा अपने पति से वह इसकी चर्चा करते हुए कहती थी- अध्यात्म कोरा रहस्यवाद नहीं है, इसमें भी वैज्ञानिक प्रयोग व परीक्षणों की गुंजाइश है। मैं तो कहती हूँ, अध्यात्म के वैज्ञानिक होने का प्रमाण वेदों-उपनिषदों में भी विद्यमान है। स्वयं बुद्ध ने भी एक वैज्ञानिक की निष्ठा से अपनी आध्यात्मिक साधनाओं को सम्पन्न किया था।

सो तो ठीक है अलेक्जेन्ड्रा, पर तुम चाहती क्या हो? फिलिप को उनकी बातें अधिक नहीं समझ में आती थी। अभी तो मैं बस भारत पहुँचकर हिमालय जाना चाहती हूँ। उनके इस कथन पर फिलिप गौर से उन्हें देखते रहे, लम्बे, छरहरे शरीर वाली, अतिशय सुन्दर कहा जा सके ऐसे नयन-नक्श वाली इस युवती का मन औरों से कितना अलग है। खूबसूरत शरीर, प्रखर विचारशील, जिज्ञासु किन्तु दृढ़ संकल्पित मन और निश्छल, निर्दोष, सरल भाव का संयोग विरल ही होता है। अलेक्जेन्ड्रा में यह सब कुछ एक साथ था। वह काफी देर तक उन्हें देखते रहे, फिर बोले ठीक है, मैं तुम्हारी सारी व्यवस्था जुटा देता हूँ। इतना कहकर उन्होंने भारत के कलकत्ता शहर में निवास कर रहे अपने एक मित्र विलियम जोन्स को एक टेलीग्राम भेज दिया।

विलियम जोन्स की रुचियाँ प्राय: अलेक्जेन्ड्रा की ही तरह थी। उनके आने की खबर ने उन्हें प्रसन्न किया। कुछ दिनों बाद अलेक्जेन्ड्रा डेविड नील कलकत्ता में थी। विलियम जोन्स उन्हें लेकर हिमालय की ओर चल पड़े। रास्ते में जोन्स ने श्रीमती नील से कहा- जिज्ञासा, उसके समाधान के लिए नियन्त्रित परिस्थितियों में किया जाने वाला प्रयोग, इसका नियमित आग्रह रहित परीक्षण, और फिर इसके निष्कर्षों का ऑकलन, यही तो विज्ञान है। वैदिक ऋषियों ने इसी ढंग से तो अपने आध्यात्मिक प्रयोगों को सम्पन्न किया था। यही परम्परा उपनिषदों में आयी, जिसे बाद में यूनान में सुकरात ने स्वीकारा। जो बाद में अन्य पश्चिमी दार्शनिकों में दिखाई दी। वेदों से विवेकानन्द, सुकरात से स्पेन्टर तक आध्यात्मिक जिज्ञासा को वैज्ञानिक अभिवृत्ति में ढलते देखा जा सकता है। वैज्ञानिक आध्यात्म के इस ऐतिहासिक परिदृश्य के पूर्वी एवं पश्चिमी आयाम में फर्क है तो सिर्फ एक- पूर्व में विशेषतया भारत में जहाँ अध्यात्म पर गम्भीर साधनात्मक वैज्ञानिक प्रयोग किए गए हैं, वहीं पश्चिम में प्राय: आध्यात्मिक जिज्ञासाएँ दार्शनिक विचारशीलता तक सीमित रही हैं।

इसीलिए तो हमें हिमालय आकर्षित करता है। कई दिनों के पड़ाव के बाद उनकी हिमालय यात्रा सम्पन्न हो चुकी थी। उनके सामने हिमालय के श्वेत शिखर थे। आसमान पर हल्का-हल्का कुहांसा छाया हुआ था। हल्की-हल्की बर्फ की बारिश भी पड़ रही थी। वातावरण में कहीं भी, किधर भी सूर्य रश्मियों की झलक नहीं थी। मौसम कुछ अजीब सा हो रहा था। वे सोच रहे थे कि जिस उद्देश्य से उन्होंने इतनी खतरनाक यात्रा की है, वह पूरा होगा भी कि नहीं। तभी मौसम और भी बिगड़ने लगा। बर्फ की हल्की बारिश बर्फीले तूफान में बदल गयी। इस झंझावाती तूफान की लपेट में श्रीमती अलेक्जेन्ड्रा डेविड नील एवं विलियम जोन्स बेहोश हो गये। उन्हें अपनी स्थिति का भान न रहा। जब होश आया तो उन्होंने स्वयं को हिमालय की एक सुन्दर सी गुफा में पाया। गुफा से बाहर निकले हिमालय के श्वेत शिखर सूर्य किरणों के संयोग से सुन्दर स्वर्णिम हो रहे थे। गुफा के बाहर एक दिव्यदेहधारी महापुरूष विद्यमान थे। जिन्होंने उनका मधुर शब्दों में स्वागत करते हुए कहा- तुम अब सुरक्षित हो।

हम इस समय कहाँ हैं ? अलेक्जेन्ड्रा डेविड नील ने उनसे टूटी-फूटी हिन्दी में पूछा। पर उन्होंने हँसते हुए अंग्रेजी भाषा में उत्तर दिया, तुम इस समय वहाँ हो, जहाँ वैज्ञानिक अध्यात्म के इतिहास ने जन्म लिया है। यह हिमालय का रहस्यमय प्रदेश है। यहीं पहली बार वेद की ऋचाएँ अवतरित हुई थी, यहीं उपनिषद् की श्रुतियों के स्वर सुने गए थे। परमेश्वर स्वयं सबसे महान् वैज्ञानिक हैं, फिर उनका बोध भला अवैज्ञानिक कैसे हो सकता है। ऐसा कहते हुए वह इन्हें साथ लेकर एक गुफा के द्वार पर पहुंचे, जो एक बड़े भारी पत्थर से ढका हुआ था। उन्होंने सहज ही उस पत्थर को एक ओर हटा दिया। अलेक्जेन्ड्रा एवं जोन्स को यह देखकर भारी आश्चर्य हुआ इन महापुरुष ने अकेले ही इतने विशालकाय पत्थर को कैसे हटा दिया। उस सुरंग जैसी गुफा में प्रवेश करके आगे बढ़ते हुए वे एक सुन्दर मैदान में आए।

यहाँ उन्होनें विभिन्न गुफाओं में दीर्घकाय महापुरुषों को समाधि लगाए हुए देखा। यहाँ चारों ओर फल एवं पुष्पों से लदी लताएँ एवं वृक्ष भी थे। कहीं-कहीं झरनों से मोतियों के समान स्वच्छ जल झर रहा था। बहुत समय तक इन दृश्यों को देखने के बाद इन्होंने उन महापुरुष से पूछा- भगवन्! यह कौन सा स्थान है ? उत्तर में हंसते हुए वह महापुरुष बोले, यह वही दिव्य स्थल है, जहाँ सबसे पहले अध्यात्म विज्ञान ने जन्म लिया था। जहाँ अभी भी अध्यात्म के उच्चस्तरीय वैज्ञानिक प्रयोग सम्पन्न किए जाते हैं। जहाँ से धरती और सृष्टि के विविध घटनाक्रमों पर नियंत्रण किया जाता है। यहाँ से सम्प्रेषित ज्ञान-विज्ञान की रश्मियाँ ही धरती के पूर्वी एवं पश्चिमी भूभागों में विविध रूपों में अपना आलोक बिखेरती हैं। विलक्षण! अद्भुत!! आश्चर्यजनक!!! उन दोनों को सन्तोष हुआ कि आज उन्हें अपना मनचाहा मिला। वे वैज्ञानिक अध्यात्म के इतिहास बीजों के साक्षी बनें। ऐसा सोचते हुए न जाने कैसे उन्हें नींद आने लगी। उन्होंने सोचा शायद यह थकान का असर है। लेकिन जब उनकी आँख खुली तो वह लाचेन मठ में थे। जहाँ महान् लामा गोमचेन उन्हें देखकर मुस्करा रहे थे। इनके हतप्रभ होने पर उन्होंने कहा, तुमने जो भी देखा वह सब सही

था। अध्यात्म विद्या सम्पूर्णतया वैज्ञानिक है। समय आने पर हिमालय के उस दिव्य क्षेत्र के महान् ऋषि इसका वैज्ञानिक अध्यात्म के रूप में प्रतिपादन करेंगे। और तब वैज्ञानिक अध्यात्म के ऐतिहासिक परिदृश्य की सभी बिखरी कड़ियाँ जुड़ सकेंगी, जो वैज्ञानिक अध्यात्म के मूल तत्त्वों को अभिव्यक्त करेंगी।

⌘

6

कार्ल जुंग ने रमण महर्षि के सान्निध्य में पाया बोध

वैज्ञानिक अध्यात्म के मूलतत्त्व को जानने-समझने की चाहत उनमें अरसे से थी। लेकिन पिछले दिनों पॉल ब्रान्टन की पुस्तक 'इन सर्च ऑफ सीक्रेट इण्डिया' में महर्षि रमण की अध्यात्म विद्या की अनुसन्धान विधि के बारे में पढ़कर इसमें काफी तीव्रता आ गयी। उन्हें लगा कि महर्षि के अध्यात्म-अन्वेषण में सच्चे वैज्ञानिक का भाव है। और वह उनकी अध्यात्म विद्या की वैज्ञानिक जिज्ञासा का समाधान कर सकते हैं। सुखद संयोग इन्हीं दिनों उन्हें भारत वर्ष की अंग्रेज सरकार की ओर से भारत देश आने के लिए आमंत्रण मिला। ये सन् १९३८ ई. के प्रारंभिक दिन थे। वातावरण में पर्याप्त ठण्डक थी। वैसे भी स्विजरलैण्ड की आबो-हवा काफी ठण्डी होती है। उन्होंने अपनी पत्नी एमा रौशेन बॉक को इस आमंत्रण के बारे में बताया। उत्तर में वह बोली कुछ नहीं बस मुस्करा दी। इसे संयोग ही कहेंगे कि उस दिन उनके पाँचों बच्चे अगाथा, ग्रेट, फ्रेन्ज, माराइना एवं हेलन वहीं पर थे। इन सभी ने अपने पिता की प्रसन्नता पर खुशी जाहिर की।

अपने परिवार से विदा लेकर प्रख्यात् मनोविज्ञानी कार्लजुंग भारत देश के लिए निकल पड़े। यात्रा लम्बी जरूर थी, पर दीर्घकाल से प्रतीक्षित मनचाही खुशी मिलने के कारण थकान की कोई अनुभूति नहीं थी। रास्ते में वह सोच रहे थे कि पिता पॉल अचिलस एवं माता ईमाइल प्रेसबर्क की चार सन्तानों में दैव संयोग ने उन्हीं को जीवित रखा था। माता ईमाइल प्रेसबर्क के मनोरोगी होने के कारण ही शरीर चिकित्सा से मनोचिकित्सा की ओर मुड़े। चेतन व्यवहार के पीछे अदृश्य अचेतन का हाथ है, इसी विचार ने उन्हें सिगमण्ड फ्रायड की निकटता प्रदान की। पर फ्रायड का काम वासना और उसके दमन को ही सब कुछ मान लेना उन्हें कुछ ज्यादा समझ में नहीं आया। क्योंकि उनकी यह अनुभूति परक मान्यता थी कि जीवन के अचेतन की चेतना के पार कुछ उच्चस्तरीय आध्यात्मिक आयाम भी होते हैं। इसी पर फ्रायड से उनका मतभेद हुआ और साथ छूटा। इन्हीं सबके बीच उन्होंने भारत एवं भारतीय आध्यात्मिक साहित्य के बारे में काफी कुछ पढ़ा। उनमें आध्यात्मिक ज़िज्ञासा यदि प्रबल थी तो उनमें वैज्ञानिक अभिवृत्ति भी कम दृढ़ नहीं थी। वह आध्यात्मिक सत्यों को वैज्ञानिक रीति-नीति से अनुभव करना चाहते थे।

यही जिज्ञासु भाव उन्हें भारत भूमि की ओर लिए जा रहा था। एक अदृश्य आकर्षण की डोर उन्हें खींच रही थी। महर्षि रमण के नाम में उन्हें सघन चुम्बकत्व का अहसास हो रहा था। भारत पहुँच कर दिल्ली जाना हुआ। सरकारी काम-काज कुछ विशेष था नहीं। सो तिरूवन्नामलाई के लिए चल पड़े। महर्षि यहीं रहते थे। तिरूवन्नामलाई पहुँचते ही उन्हें दूर से अरूणाचलम् के दर्शन हुए। स्थानीय लोगों ने उन्हें बताया कि यहीं महर्षि का निवास है। इसी पवित्र पर्वत की विरूपाक्षी गुफा में उन्होंने वर्षों कठोर तप किया है। इन लोगों के सहयोग से वे महर्षि के आश्रम पहुँच गए। पवित्र पर्वत अरूणाचलम् एवं इसकी तलहटी में बना महर्षि का आश्रम दोनों ही उन्हें सुखद व सम्मोहक लगे। उन्हें लगा सम्भवत: ये उनकी जिज्ञासाओं के साकार समाधान हैं। आश्रम परिसर में कुछ लोग काम कर रहे थे। पूछने पर पता चला कि ये एच्छमा, मध्वस्वामी, रामनाथ ब्रह्मचारी एवं मुदलियर ग्रेनी हैं। इनमें से

रामनाथ ब्रह्मचारी ने उनके ठहरने की व्यवस्था की और अन्नामलाई स्वामी से मिलाया।

अन्नामलाई स्वामी अच्छी अंग्रेजी जानते थे। साथ ही महर्षि के सहयोगी व सलाहकार भी थे। इन्हीं से उन्होंने अपने आगमन का मकसद कहा- कार्लगुस्ताव जुंग, अन्नामलाई स्वामी ने उन्हें उनका पूरा नाम लेकर सम्बोधित किया- महर्षि सायं बेला में मिलेंगे। शाम को अरूणाचलम की तलहटी में खुले स्थान पर महर्षि से मुलाकात हुई। महर्षि उस समय शरीर पर केवल कौपीन धारण किए हुए थे। उनके चेहरे पर हल्की दाढ़ी, होठों पर बालसुलभ निर्दोष हँसी, आँखों में आध्यात्मिक प्रकाश के साथ प्रगाढ़ अपनापन था। प्रख्यात् मनोवैज्ञानिक कार्ल जुंग को महर्षि अपने से लगे। हालांकि उनके मन में शंका भी उठी कि ग्रामीण जनों की तरह दिखने वाले ये महर्षि क्या उनके वैज्ञानिक मन की जिज्ञासाओं का समाधान कर पाएँगे ?

उनके मन में आए इस प्रश्न के उत्तर में महर्षि ने हल्की सी मीठी हंसी के साथ कहा- भारत के प्राचीन ऋषियों की अध्यात्म विद्या सम्पूर्णतया वैज्ञानिक है। आधुनिक वैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक चिन्तन-चेतना के लिए इसे वैज्ञानिक अध्यात्म कहना ठीक रहेगा। इसके मूलतत्त्व पांच हैं- १. जिज्ञासा- इसे तुम्हारी वैज्ञानिक भाषा में शोध समस्या भी कह सकते हैं। २. प्रकृति एवं स्थिति के अनुरूप सही साधना विधि का चयन। वैज्ञानिक शब्दावली में इसे अनुसन्धान विधि भी कह सकते हैं। ३. शरीर मन की विकारविहीन प्रयोगशाला में किए जाने वाले त्रुटिहीन साधना प्रयोग। वैज्ञानिक ढंग से कहें तो नियंत्रित स्थति में की जाने वाली वह क्रिया प्रयोग है, जिसमें सतत् सर्वेक्षण किया जाता है, Experiment is observation of any action under control conditions. उन्होंने मधुर अंग्रेजी भाषा में अपने कथन को दुहराया। ४. किए जा रहे प्रयोग का निश्चित क्रम से परीक्षण एवं सतत् ऑकलन। एवं अन्तिम ५. इन सबके परिणाम में सम्यक् निष्कर्ष। महर्षि

ने बड़े धीरे-धीरे सहज स्वर में अपनी बातें पूरी की। इस बीच अन्नामलाई स्वामी ने उन्हें एक गिलास पानी लाकर दिया। जिसे उन्होंने धीरे-धीरे पिया।

इसी के साथ वह उठ खड़े हुए। कार्लजुंग भी उन्हीं के साथ उठे। उनके मुख के भावों से लग रहा था कि वह सन्तुष्ट हैं। अब महर्षि धीमे कदमों से वहीं टहलने लगे। टहलते-टहलते उन्होंने कहा- मेरे आध्यात्मिक प्रयोग की वैज्ञानिक जिज्ञासा थी- मैं कौन हूँ? इसके समाधान के लिए मैंने मनन एवं ध्यान की अनुसन्धान विधि का चयन किया। इसी अरूणाचलम पर्वत की विरूपाक्षी गुफा में शरीर व मन की प्रयोगशाला में मेरे प्रयोग चलते हैं। इन प्रयोगों के परिणाम में अपरिष्कृत अचेतन परिष्कृत होता गया। चेतना की नयी-नयी परतें खुलती गयी। इनका मैंने निश्चित कालक्रम में परीक्षण एवं ऑकलन किया। और अन्त में मैं निष्कर्ष पर पहुँचा, मेरा अहं आत्मा में विलीन हो गया। बाद में आत्मा-परमात्मा से एकाकार हो गयी। अहं के आत्मा में स्थानान्तरण ने मनुष्य को भगवान् में रूपान्तरित कर दिया।

महर्षि की इन बातों को सुनते हुए कार्ल जुंग ने दाहिने हाथ से अपनी आँखों का चश्मा निकाला और रूमाल से उसे साफ कर फिर आँखों में लगा लिया। उनके चेहरे पर पूर्ण प्रसन्नता और गहरी सन्तुष्टि के भाव थे। कुछ ऐसे जैसे कि उनकी दृष्टि का धुंधलका मिटकर सब कुछ साफ-साफ हो गया हो। अब सब कुछ स्पष्ट था। वैज्ञानिक अध्यात्म के मूल तत्त्व उन्हें समझ में आ चुके थे। महर्षि रमण से इस भेंट के बाद वह भारत से वापस लौटे। और फिर इसी वर्ष १९३८ ई. में उन्होंने येले विश्वविद्यालय में अपना व्याख्यान दिया 'मनोविज्ञान एवं धर्म'। इसमें उनके नवीन दृष्टिकोण का परिचय था। बाद के वर्षों में उन्होंने 'श्री रमण एण्ड हिज़ मैसेज टु माडर्न मैन' के प्राक्कथन में अपनी ओर से लिखा- श्री रमन भारत भूमि के सच्चे पुत्र हैं। वह अध्यात्म की वैज्ञानिक अभिव्यक्ति के प्रकाशपूर्ण स्तम्भ हैं और साथ में कुछ अद्‌भुत भी। उनके जीवन एवं शिक्षा में हमें पवित्रतम् भारत के दर्शन होते हैं, जो समूची मानवता को वैज्ञानिक अध्यात्म के मूलमन्त्र का सन्देश दे रहा है।

⌘

7

वैज्ञानिक अध्यात्म का मूलमन्त्र गायत्री महामन्त्र

'वैज्ञानिक अध्यात्म का मूलमन्त्र- गायत्री है। इसमें वैज्ञानिक अध्यात्म की सिद्धान्त-संरचना एवं इसकी प्रयोग विधि दोनों का समावेश है।' यह कहते हुए युगऋषि आचार्य श्री ने वहाँ उपस्थित लोगों की ओर देखा। उनकी दृष्टि में क्रान्तदर्शी प्रतिभा की प्रखरता एवं आत्मीय भावों की सजलता दोनों का समावेश था। यह बुद्धिजीवियों की संगोष्ठी थी। इसमें तकरीबन डेढ़ सौ लोग उपस्थित रहे होंगे। इसे रायपुर के कार्यकर्त्ताओं ने रविशंकर विश्वविद्यालय में आयोजित किया था। रायपुर- शहर आज छत्तीसगढ़ राज्य की राजधानी है। उन दिनों यह सम्पूर्ण क्षेत्र अविभाजित मध्यप्रदेश का हिस्सा था। यूं तो सम्पूर्ण देश एवं समूची विश्व मानवता युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव के लिए उनकी अपनी थी। परन्तु फिर भी छत्तीसगढ़ क्षेत्र उनके लिए कुछ विशेष था। यदा-कदा वे अपनी अन्तरंग चर्चाओं में कहा करते थे कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को सबसे अधिक प्रेम एवं अपनापन इसी दण्डकारण्य क्षेत्र के निवासियों ने दिया था। आज पुनः इस युग में भी श्रीराम इस सम्पूर्ण क्षेत्र के लोगों को अपने हृदय के नजदीक अनुभव करते थे।

जब कभी वह उन्हें बुलाते, वह छत्तीसगढ़ अवश्य जाते। अब की बार इस वर्ष सन् १९६८ ई. की सर्दियों में रायपुर और आस-पास के लोगों ने बुद्धिजीवियों की विशेष संगोष्ठी का आयोजन वहीं के विश्वविद्यालय परिसर में किया था। इस आयोजन में उन्होंने रामकृष्ण मिशन-स्वामी विवेकानन्द आश्रम- रायपुर के अध्यक्ष स्वामी आत्मानन्द जी को बुलाया था। स्वामी आत्मानन्द जी युगऋषि गुरुदेव को बहुत प्रिय थे। जब कभी भी उनका रायपुर क्षेत्र में आना होता, वह उनसे अवश्य मिलते। आत्मानन्द जी भी उनके आमंत्रण पर एक-दो बार गायत्री तपोभूमि मथुरा पधार चुके थे। आत्मानन्द छत्तीसगढ़ के मूल निवासी थे। उनका जन्म मांढर से १ मील दूर बरबंदा गांव में हुआ था। हालांकि वह रायपुर जिले के कपसदा गांव में ज्यादातर रहे। उच्च शिक्षा उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय में पायी। महत्त्वपूर्ण बात उनके बारे में यह थी कि उन्होंने एम.एस-सी. एवं आई.ए.एस. दोनों ही परीक्षाओं में एक साथ सर्वोच्च प्रथम स्थान पाया। इसके बावजूद उन्होंने सांसारिक सफलताओं को त्यागकर लोकसेवा का मार्ग चुना और श्रीरामकृष्ण मठ-मिशन में संन्यास ग्रहण किया। उनके दो उच्चशिक्षित भ्राताओं ने भी उन्हीं का अनुगमन किया।

त्याग व सेवा का उनका यह भाव युगऋषि को अत्यन्त प्रिय था। इसके अलावा उन्हें प्रिय थी वैज्ञानिक अध्यात्म में उनकी प्रगाढ़ अभिरुचि। आज की इस विशेष संगोष्ठी में यही स्वामी आत्मानन्द युगऋषि के साथ मंच पर बैठे थे। और उन्हें ध्यान से सुन रहे थे। इस समय वह कह रहे थे, गायत्री महामन्त्र में ॐकार सहित तीन व्याहृतियों के साथ तीन चरण, नौ शब्द एवं चौबीस अक्षर हैं। 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।' इस अद्भुत महामन्त्र में परमेश्वर का सत्य-प्रकृति के तत्त्व एवं उनके संयोग से होने वाली सृष्टि संरचना का सम्पूर्ण विज्ञान सूत्र रूप में गुंथा है। यह मन्त्र सूत्र ठीक उसी तरह, बल्कि उससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, जैसे कि भौतिकशास्त्र, रसायन शास्त्र एवं गणित शास्त्र के सूत्र होते हैं। इसमें न केवल सृष्टि विज्ञान, ब्रह्माण्ड विज्ञान है, बल्कि आत्म विज्ञान-साधना विज्ञान भी है।

युगऋषि की इन बातों को लोग ध्यान से सुन रहे थे। उनकी वाणी में उनकी दीर्घकाल की गायत्री साधना के अनुभव एवं कठोर तप का तेज घुला था। वह कह रहे थे कि ॐकार परमेश्वर है जिसके संयोग से सचेतन होकर भूर्भुवः स्वः- इन तीन तथा तम-रज-सत इन तीन गुणों वाली मूलप्रकृति अपने तेईस तत्त्वों को अभिव्यक्त करती है। गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षर, मूल प्रकृति और उसके तेईस तत्त्व- महतत्त्व, अहंकार एवं पंचतन्मात्राएँ तथा मन, पंचमहाभूत एवं दस इन्द्रियाँ, इनके विज्ञान को बताते हैं। इसी सूत्र सत्य को सांख्य दर्शन में कहा गया है। इसमें सृष्टि विज्ञान के सारे रहस्य सूत्र रूप में बताये गए हैं, जो प्रकारान्तर से गायत्री मन्त्र का ही विस्तार है।

आचार्य श्री की ये बातें गूढ़ थीं, परन्तु इनमें गायत्री महामन्त्र में समावेशित सृष्टि विज्ञान ध्वनित हो रहा था। अब उन्होंने गायत्री महामन्त्र में समाविष्ट आत्मविज्ञान के बारे में कहना शुरू किया- ॐकार परमेश्वर है, परम सत्य है, जो भूर्भुवः स्वः यानि कि देह, प्राण, मन में परिव्यास है। जिसकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के लिए साधक को गायत्री के तीन चरण- चिन्तन यानि कि विचार, चरित्र यानि कि भाव एवं व्यवहार यानि कि क्रिया को परिमार्जित करने के लिए गायत्री महामन्त्र के नौ शब्दों के रूप में नौ गुणों- १. तत्- जीवन विज्ञान, २. सवितुः- शक्ति संचय, ३. वरेण्यं- श्रेष्ठता। ४. भर्गो-निर्मलता, ५. देवस्य- दिव्य दृष्टि, ६. धीमहि- सद्गुण। ७. धियो- विवेक, ८. योनः- संयम, ९. प्रचोदयात्- सेवा की साधना करनी पड़ती है। और तब गायत्री महामन्त्र के चौबीस अक्षरों के रूप में चौबीस ग्रन्थियों- १. तत्- तापिनी, २. स- सफला, ३. वि- विश्वा, ४. तुर- तुष्टि, ५. व- वरदा, ६. रे- रेवती, ७. णि- सूक्ष्मा, ८. यं-ज्ञाना, ९. भर- भर्गा, १०. गो- गोमती, ११. दे- देविका, १२. व- वाराही, १३. स्य- सिंहनी, १४. धी- ध्याना, १५. म- मर्यादा, १६. हि- स्फुटा, १७. धि- मेधा, १८.यो- योगमाया, १९. यो- योगिनी, २०. नः- धारिणी, २१. प्र- प्रभवा, २२. चो- ऊष्मा, २३. द- दृश्या एवं २४ यात्-निरञ्जना का जागरण होता है।

इससे गायत्री महामन्त्र के साधक में परमेश्वर की समर्थ अभिव्यक्ति १. सफलता, २. पराक्रम, ३. पालन, ४. कल्याण, ५. योग, ६. प्रेम, ७. धन, ८. तेज, ९. रक्षा, १०. बुद्धि, ११. दमन, १२. निष्ठा, १३. धारणा, १४. प्राण, १५. संयम, १६. तप, १७. दूरदर्शिता, १८. जागृति, १९. उत्पादन, २० सरसता, २१. आदर्श, २२. साहस, २३. विवेक एवं २४. सेवा के रूप में होती है। गायत्री महामन्त्र में समावेशित इस वैज्ञानिक अध्यात्म के सृष्टि विज्ञान एवं आत्म विज्ञान को सार रूप में समझाते हुए उन्होंने कहा- यह तभी सम्भव है जब गायत्री महामन्त्र के तीन चरणों में उपदिष्ट वैज्ञानिक अध्यात्म की क्रियाविधि के तीन तत्त्वों- १. सम्यक् जिज्ञासा, २. त्रुटिहीन प्रयोग विधि एवं ३. निष्कर्ष के सम्यक् ऑकलन का अनुपालन हो।

अपनी बातों को पूरी करने के बाद आचार्य श्री मंच पर अपने आसन पर बैठ गए। इसके साथ आयोजकों में एक ने स्वामी आत्मानन्द से आग्रह किया कि वह भी कुछ कहें। इस अनुरोध पर स्वामी आत्मानन्द जी शालीनता के साथ उठे और उन्होंने आचार्य श्री की ओर देखते हुए हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा- सबसे पहले मैं इस दण्डकारण्य भूमि छत्तीसगढ़ में हम सबकी सुधि लेने आए प्रभु श्रीराम को प्रणाम करता हूँ। उनके इस भावपूर्वक कथन पर सभास्थल में तालियों की अनोखी गूंज उठी। फिर उन्होंने कहा- मैंने आचार्य श्री द्वारा रचित गायत्री महाविज्ञान को पढ़ा है, पर गायत्री महामन्त्र को वैज्ञानिक अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य में समझने का अवसर आज मिला। ऐसा कहकर वह दो पल के लिए थमे फिर बोले- मैं अखण्ड ज्योति पत्रिका का नियमित पाठक हूँ। मैंने इसी वर्ष १९६८ में जुलाई, अगस्त एवं सितम्बर महीने में प्रकाशित अपनों से अपनी बात के अन्तर्गत १. हम अध्यात्म को बुद्धिसंगत एवं वैज्ञानिक स्तर पर प्रतिपादित करेंगे, २. वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रतिपादन की दिशा में बढ़ते कदम एवं ३. वैज्ञानिक अध्यात्म और प्रबुद्ध परिजनों का सहयोग भी गहराई से पढ़ा है।

इन लेखों में से एक लेख- वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रतिपादन की दिशा में बढ़ते कदम जो अखण्ड ज्योति पत्रिका में अगस्त महीने में छपा है। इसमें आचार्य श्री ने लिखा है- 'गत बीस वर्षों में विज्ञान ने अतितीव्र प्रगति की है। और उसका चरण अध्यात्म के समर्थन की ओर बढ़ा है। लगता है कि यह प्रगतिक्रम जारी रहा तो अगले पचास वर्षों में अध्यात्म और विज्ञान दोनों इतने समीप आ जाएँगे कि दोनों का एकीकरण एवं समन्वय असम्भव न रहेगा।' आचार्य श्री के इन शब्दों के साथ मैं अपने भी कुछ शब्द जोड़ते हुए यह कहना चाहता हूँ कि आचार्य जी महान् ऋषि हैं। और ऋषिवाणी कभी मिथ्या नहीं होती। उन्होंने पचास वर्ष की जो बात कही है वह १९६८+५० यानि २०१८ में अवश्य पूर्ण होगी। मैं तो शायद तब तक जीवित न रहूँ, परम पूज्य आचार्य श्री भी सम्भवतः अपनी अवतार लीला का संवरण कर लें, परन्तु उनकी भविष्य दृष्टि एवं युगदृष्टि को विश्वमानवता अवश्य साकार होते देख सकेगी। तब निश्चित ही वैज्ञानिक अध्यात्म का सत्य वैज्ञानिकों की प्रयोगशाला में और सूक्ष्म ऋषियों की प्रयोगशाला में एक साथ साकार रूप लेता दिखाई देगा।

8

ऋषियों की प्रयोगशाला - यज्ञशाला

ऋषियों की प्रयोगशाला- यज्ञशाला है। महर्षि याज्ञवल्क्य अपने यज्ञ आश्रम के अन्तेवासी विद्यार्थियों को यज्ञ विज्ञान की गूढ़ताओं का बोध करा रहे थे। महर्षि याज्ञवल्क्य यज्ञ विज्ञान के महान् अनुसन्धानकर्त्ता ऋषि थे। वह सुदीर्घ काल से यज्ञ विज्ञान पर व्यापक, सूक्ष्म व गहन अन्वेषण करने में तल्लीन थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने राजाओं व ऋषियों में समान रूप से सम्मानित महाराज जनक के राज्य के इस उत्तम प्राकृतिक भू-भाग में इस यज्ञ-आश्रम की स्थापना की थी। उनका यह आश्रम सुविस्तीर्ण भू-भाग में फैला हुआ था। इसमें छोटी-बड़ी अनेकों यज्ञशालाएँ थी, जिनमें निरन्तर अनुसन्धान कार्य होते रहते थे। इन यज्ञशालाओं में विविध प्रकार के आकार-प्रकार वाले यज्ञ कुण्ड थे। त्रिकोण, चतुष्कोण, षटकोण, शत, सहस्रकमल दल वाले, मण्डलाकार, कुम्भाकार और भी न जाने कितने आकार-प्रकार वाले भांति-भांति की माप वाले यज्ञकुण्ड-यज्ञवेदियाँ यहाँ थी। कई यज्ञ- शालाएँ तो यहाँ ऐसी भी थी जिनमें किसी तरह का कोई यज्ञकुण्ड न था। बस प्रयोग-परीक्षण के लिए विविध प्रकार के उपकरण यहाँ लगे हुए थे।

महर्षि के इस आश्रम में विस्तीर्ण औषधि उद्यान एवं सघन अरण्य भी थे। औषधि उद्यान में प्रायः सभी तरह की औषधियाँ लगी थीं, जिनका प्रयोग यज्ञ के अलग-अलग वैज्ञानिक विधानों में किया जाता था। पास के सघन अरण्य में भिन्न-भिन्न प्रजातियों के वृक्ष संरक्षित थे, जिनकी काष्ठ समिधाएँ यज्ञ के वैज्ञानिक प्रयोगों में काम आती थी। इस आश्रम की सुविस्तीर्णता में आश्रम का अपना कृषिक्षेत्र भी था। जिनमें विविध फसलों को उगाकर उन पर यज्ञ के वैज्ञानिक प्रभावों का परीक्षण किया जाता था। महर्षि उद्यान एवं अरण्य में विहार करने वाले पशु-पक्षियों को भी अपनी यज्ञीय-प्रयोगशाला का अभिन्न सदस्य मानते थे। उनका कहना था कि यज्ञ केवल मानवों के लिए नहीं, केवल धरा के लिए भी नहीं, यह तो समस्त सृष्टि के लिए है। इसलिए सभी को इसमें भागीदार होना चाहिए और सभी को इससे लाभान्वित होना चाहिए।

याज्ञवल्क्य के इस यज्ञ आश्रम में एक ऐसा भी क्षेत्र था, जहाँ सभी का प्रवेश सम्भव न था। इस क्षेत्र की यज्ञशालाओं में सृष्टि संचालन, जीवन संचालन में विघ्न उत्पन्न करने वाली, जीवन की सम्पन्नता-सम्पदा का विनाश करने वाली राक्षसी, आसुरी शक्तियों को नियंत्रित करने वाले, उनके विनाशकारी कृत्यों का विनाश करने वाले, स्वयं उन्हें ही विनष्ट करने में समर्थ रक्षोघ्न प्रयोग यहाँ सम्पन्न होते थे। इस कार्य का संचालन ऋषि काठक करते थे। जो स्वयं रूद्र के उपासक होने के साथ स्वयं भी रौद्र तेज से सम्पन्न थे। असुरता उनके नाम से भय खाती थी, विनाशक कृत्याओं के वह काल थे। अपनी महान् तेजस्विता के बावजूद वह हृदय से सजल व सौम्य थे। सुदीर्घ काल से वह महर्षि याज्ञवल्क्य के सहयोगी थे। इस समय भी वह महर्षि के साथ ही बैठे थे। उनके साथ ऋषि दीर्घतमा, कुत्स एवं ऋषि गृत्समद भी थे। जो महर्षि याज्ञवल्क्य के स्नेह सूत्र से आबद्ध यहाँ आए हुए थे।

ये सब ऋषिगण हमेशा कहा करते थे कि महान् तत्त्ववेत्ता, महान् योगी एवं महान् यज्ञ विज्ञानी ऋषि याज्ञवल्क्य का सान्निध्य, सुदुर्लभ एवं सुपावन है। महर्षि इस समय समझा रहे थे कि यूं तो प्रत्येक लोक हितकारी कर्म यज्ञ है। जिन कर्मों में

स्वार्थ एवं अहं का तनिक भी कलुष नहीं होता, जो सर्वथा इदं न मम् (यह मेरा नहीं, मेरे लिए नहीं, लोक हित के लिए है) के भाव से प्रेरित व प्रवर्तित होते हैं, वे सभी कर्म यज्ञ हैं। स्वयं परमेश्वर ने यह सृष्टि यज्ञीय भाव से, यज्ञ प्रयोग से और यज्ञ कर्म करने के लिए उत्पन्न की है। इसलिए वह श्रेष्ठतम् यज्ञकर्त्ता हैं और यज्ञ पुरुष कहलाते हैं। लेकिन इसके बावजूद यज्ञ का सर्वोत्कृष्ट एवं समर्थ विज्ञान है, जिसके विविध प्रयोग बाह्यजगत् में, अन्तर्जगत् में, स्थूल कर्मकाण्डों एवं सूक्ष्म क्रियाओं से किये जाते हैं।

इनके मुख्य भेद इक्कीस हैं, जैसा कि ऋक्वाणी कहती है- '**अग्निर्विद्वन्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्** (ऋक् १०.५२.४)' परन्तु उपभेदों की कोई सीमा नहीं है। इतना कहते हुए महर्षि थोड़ा रुके, किंचित विचारमग्न हुए फिर कहने लगे कि यज्ञ प्रयोग में भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों शक्तियों का सामञ्जस्यपूर्ण, सन्तुलित एवं सर्वोत्कृष्ट उपयोग होता है। यज्ञ की भौतिक शक्तियों की बात कहें तो विविध श्रेणी का ताप देने वाली अलग-अलग काष्ट समिधाएँ, जैसे कि आम्र, अश्वत्थ, उदुम्बर, अर्क, बिल्व इन सभी का तापक्रम अलग है। भिन्न-भिन्न गुणों वाली औषधियाँ भी यज्ञ प्रयोग की भौतिक शक्ति का घटक हैं। यज्ञकुण्डों के विविध आकार-प्रकार भी यज्ञ ऊर्जा को संरक्षित व अभिवर्धित करने के लिए हैं। ये और इस जैसे कई और घटक यज्ञ की भौतिक शक्तियों के प्रतीक हैं।

यज्ञ प्रयोग आध्यात्मिक शक्तियों के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं- भिन्न-भिन्न प्रकार के मन्त्र, उनके उच्चारण के विविध आरोह-अवरोह क्रम। इनके यज्ञ प्रयोग में भागीदार- ऋत्विक्, होता आदि अनुष्ठित साधकों की साधना की संकल्पित आध्यात्मिक ऊर्जा। इन दोनों भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का यज्ञ के वैज्ञानिक प्रयोग में कुशल सामञ्जस्य एवं सन्तुलन उत्पन्न करते हैं विशिष्ट मुहूर्त। जो अलग-अलग तिथियों, योगों केअनुसार अन्तरीक्षीय ऊर्जा प्रवाहों को अपने विशिष्ट कार्य में उपयोग कर यज्ञ प्रयोग को परम समर्थ एवं सार्थक बना देते हैं। यज्ञ से पर्जन्य

पर्यावरण परिशोधन का रहस्य भी इसी में समाविष्ट है। महर्षि याज्ञवल्क्य की वाणी से अभिव्यक्त यज्ञ विज्ञान की गूढ़, सूक्ष्म व्याख्या श्रोताओं को अभिभूत कर रही थी। सभी अभिभूत थे। बस ऋषि गृत्समद के अन्तर्मन में अन्तर्यज्ञ की जिज्ञासा यदा-कदा कौंध जाती थी।

तत्त्ववेत्ता, अन्तर्ज्ञानी एवं महान् योगी याज्ञवल्क्य इस पर हल्के से मुस्कराए और कहने लगे बाह्य यज्ञ प्रयोग की भांति आन्तरिक यज्ञ प्रयोग भी विशिष्ट हैं। इन्हें सम्यक् रीति से करने पर असामान्य एवं असाधारण आध्यात्मिक ऊर्जा का विकास होता है। थोड़ा ठहर कर वह बोले- हमारा अस्तित्त्व, हमारा व्यक्तित्व स्वयं में एक विशिष्ट यज्ञकुण्ड हैं। इसमें भी बाह्य कुण्ड की ही भांति मन-प्राण एवं देह वाली तीन मेखलाएँ हैं। इनमें से संकल्प से सृजन करने वाली मन मेखला के अधिष्ठाता ब्रह्मा, पोषण करने वाली प्राण मेखला के अधिष्ठाता विष्णु एवं स्वयं के सत्कर्मों एवं दुष्कर्मों से भगवान् महेश्वर के शिव एवं रूद्र रूप को प्रकट करने वाली देह मेखला के स्वामी रूद्र-महेश्वर हैं। इस श्रेष्ठतम यज्ञ प्रयोग के भागीदारों की चर्चा करते हुए श्रुति कहती है- '**तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नीः उरो वेदी वेद शिखा, वाग् होता, प्राण उद्गाता, चक्षुरध्वर्यु, मनोब्रह्मा, श्रोतमाग्नीध्र मन्यु रवं तथा ह्वनीयः उद्गाता**'- इस आध्यात्मिक यज्ञ में आत्मा यजमान, श्रद्धा यजमान की पत्नी, हृदय वेदी, वेद शिखा, वाणी होता, प्राण उद्गाता, चक्षु अध्वर्यु, मन ब्रह्मा, कान आग्नीध्र, मुख आवाहनीय अग्नि है। इस यज्ञ विशेष में प्रज्वलित कुण्डलिनी की महाज्वालाएँ, संस्कारों की आहुतियों को स्वीकार कर आत्मा को परमात्मा का स्वरूप प्रदान करती हैं। महर्षि की इस वाणी ने ऋषि गृत्समद को गहरी सन्तुष्टि दी। परन्तु ऋषि याज्ञवल्क्य को अभी कुछ और कहना था- वह बोले यज्ञ के इन वैज्ञानिक प्रयोगों में मुझसे भी कहीं अधिक निष्णात वैज्ञानिक अध्यात्म के वैदिक द्रष्टा- ऋषि विश्वामित्र हैं। उनके निष्कर्षों का अवलोकन इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण होगा।

⌘

9

विश्वामित्र का सावित्री महाप्रयोग

'वैज्ञानिक अध्यात्म के वैदिक द्रष्टा- ऋषि विश्वामित्र इन दिनों अपने विशिष्ट महाप्रयोग में लीन थे। पिछले कुछ वर्षों से वह पूरी तरह से एकान्त में थे। वाणी का प्रयोग भी उन्होंने प्राय: बन्द कर रखा था। उनकी वाणी अब केवल विशेष मुहूर्तों में किए जाने वाले अति आवश्यक मन्त्रोच्चार के लिए ही सक्रिय होती थी। अन्य कार्यों के लिए तो वह बस संकेतों से काम चला लेते थे। उनके इस महाप्रयोग की ऊष्मा-ऊर्जा से उनकी महान् तपस्थली सिद्धाश्रम का कण-कण ऊर्जस्वित-आपूरित हो रहा था। यूं तो महर्षि विश्वामित्र ने अपना समूचा जीवन तप के अनगिन आध्यात्मिक प्रयोगों में बिताया था। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के सभी बासठ सूक्त इसकी साक्षी देते हैं। ऋग्वेद के इस तृतीय मण्डल के बासठवें सूक्त का दसवां मन्त्र गायत्री महामन्त्र के रूप में लोक विख्यात् हो रहा था। इसी के साथ गायत्री महामन्त्र के द्रष्टा, अलौकिक अनुभवी सिद्ध एवं इस महामन्त्र से जुड़ी सहस्राधिक साधनाओं के सूक्ष्म एवं पारगामी तत्त्वदर्शी महर्षि विश्वामित्र भी सुविख्यात् हो रहे थे।

परन्तु उन्हें लोक ख्याति नहीं, लोक सेवा प्रिय थी। विश्वहित के प्रयोजनों में स्वयं को निरन्तर खपाते रहने के कारण ही विश्व आज उन्हें विश्वामित्र के रूप में जान रहा था। पहले कभी वह वैभवशाली नरेश विश्वरथ हुआ करते थे। परन्तु जब से उन्होंने ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के संग-सान्निध्य में अध्यात्म विद्या-ब्रह्मतेज एवं ब्रह्म बल की महिमा जानी, तबसे वह क्षात्र बल व क्षात्रतेज से वैराग्य लेकर आध्यात्मिक प्रयोगों में लीन हो गए। अब तो ब्रह्मर्षि वशिष्ठ भी उनके महान् तप एवं लोकसेवा की प्रशंसा करते थकते नहीं थे। इसीलिए तो उन्होंने आग्रहपूर्वक महाराज दशरथ से अनुरोध करके श्रीराम एवं उनके अनुज लक्ष्मण को महर्षि विश्वामित्र की सेवा में भेजा था। उस समय भी महर्षि आवश्यक प्रयोग कर रहे थे। लेकिन यह तो बहुत साल पहले की बात थी। अब तो महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो चुके थे। श्रीराम अपनी भार्या सीता एवं अनुज लक्ष्मण सहित चित्रकूट वन में थे। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ अयोध्या में कुमार भरत को अपना संरक्षण प्रदान कर रहे थे।

इधर ऋषि विश्वामित्र ने सिद्धाश्रम में नया विशिष्ट महाप्रयोग प्रारम्भ किया था। इस प्रयोग को शुरू करने से पहले उन्होंने अपने शिष्य जाबालि, पुत्र मधुछन्दा, पौत्र जेत एवं अघमर्षण को बुलाकर कहा था- इस बार की चुनौतियाँ पहले की सभी चुनौतियों से कहीं अधिक गम्भीर हैं। इस बार सवाल किन्हीं मारीच, सुबाहु या ताड़का द्वारा फैलाए जा रहे आतंक का नहीं है, सवाल किसी क्षेत्र विशेष की सुरक्षा का भी नहीं है। इसबार तो संकट सृष्टि के अस्तित्त्व पर है। असुरता अपने व्यूह रच रही है। मायावी एवं पैशाचिक शक्तियाँ नए-नए संहारक-मारक प्रयोग कर रही हैं। उन सबको एक साथ निरस्त करना है। इतना ही नहीं भविष्य की सतयुगी परिस्थितियों के लिए अपरा एवं परा प्रकृति में, जड़ एवं चेतन प्रकृति में एक साथ महापरिर्वन करने होंगे। और यह तभी सम्भव हो पाएगा, जबकि समूचे विश्व की कुण्डलिनी का जागरण हो।

'विश्व कुण्डलिनी जागरण' इस शब्द ने युवा जेत एवं अघमर्षण को ही नहीं प्रौढ़ हो चुके मधुछन्दा एवं जाबालि को भी चकित एवं रोमांचित कर दिया। ये दोनों तो अतिदीर्घकाल से महर्षि के सभी प्रयोगों में घनिष्ठ सहयोगी थे। परन्तु आज इनके चौंकने एवं रोमांचित होने को उन्होंने अनदेखा कर दिया। वह इन्हें समझा रहे थे- इसके लिए धरती की कुण्डलिनी शक्ति जो उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव के बीच प्रवाहित चुम्बकीय प्रवाह के रूप में है, इसे सौर ऊर्जा से आन्दोलित, उद्वेलित एवं परिवर्तित करना पड़ेगा। इसके लिए अनिवार्य है, सौर ऊर्जा का व्यापक सन्दोहन एवं आवश्यक सम्प्रेषण-संयोजन। यह कार्य अति कठिन है, परन्तु असम्भव नहीं। इसके लिए मैं गायत्री महाविद्या का सावित्री प्रयोग करूँगा।

यानि कि विलोम गायत्री के ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मशिरस् एवं पाशुपात का एक साथ समन्वय, बल्कि उससे भी कहीं कुछ अधिक। महर्षि के कथन के साथ ही ऋषि जाबालि एवं ऋषि मधुछन्दा के मन में लगभग एक साथ ही यह बात आयी। उनके इन मानसिक संवेदनों ने महर्षि की भावचेतना को कहीं छुआ। वह बोले- तुम ठीक सोचते हो। परन्तु मैं सृष्टि की रक्षार्थ अध्यात्म विद्या के इस महानतम् वैज्ञानिक प्रयोग को अवश्य करूँगा। आत्मिक चेतना एवं सविता चेतना के तारतम्य को बनाने वाले आधार इसी से विनिर्मित होंगे। सावित्री विश्वव्यापी है। इसके प्रभाव से भूमण्डल का सम्पूर्ण क्षेत्र एवं प्राणी समुदाय का समूचा वर्ग प्रभावित होगा। इस प्रभाव से तमस् क्षीण होगा और सत्त्व की अभिवृद्धि होगी। इससे अन्तःकरण एवं पर्यावरण में एक साथ सुखद परिवर्तन होंगे। विनाशक शक्तियाँ विनष्ट होंगी एवं सृजन शक्तियों का नवउत्थान होगा।

हमें क्या करना होगा भगवन् ? महर्षि को सुन रहे सभी जनों ने अपने कर्त्तव्य को निर्धारित करना चाहा। उनके प्रश्न के उत्तर में महर्षि बोले इस कठिन घड़ी में तुम सभी को अपने दायित्व दृढ़ता से निभाने चाहिए। वत्स जाबालि इस कठिन कार्य में मेरे निजी सहयोगी की भूमिका निभाएँगे। पुत्र मधुछन्दा अयोध्या में तप कर

रहे ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, चित्रकूट में तपस्यारत ब्रह्मर्षि अत्रि एवं सुदूर दक्षिण में वेदपुरी में कठोरतप में संलग्न महर्षि अगस्त्य से सूक्ष्म सम्पर्क बनाए रखेंगे। और उनके संकेतों से समय-समय पर हमें अवगत कराएँगे। क्योंकि ब्रह्मर्षि वशिष्ठ इस कार्य के लिए सौ पुरुषों का ऐसा महान् साधक वर्ग तैयार कर रहे हैं, जो लोक में सतयुगी वातावरण, सावित्री शक्ति के अवतरण को सहज बनाएँ। महर्षि अत्रि चित्रकूट में हैं, उनका दायित्व यह है कि वह इस महाप्रयोग की ऊर्जा को धारण करने में वत्स राम, लक्ष्मण एवं पुत्री सीता को समर्थ बनाएँ।

इसी क्रम में अगली कड़ी में महर्षि अगस्त्य हैं- वह इस सावित्री महाप्रयोग से उत्पन्न होने वाली शक्ति महान् दिव्यास्त्रों की संरचना करेंगे। और समय आने पर श्रीराम को प्रदान करेंगे। यह सभी कार्य एक साथ, एक ही स्तर पर सम्पन्न होंगे। यद्यपि हम सभी का चेतना स्तर पर जुड़ाव तो होगा ही। परन्तु अपनी-अपनी प्रायोगिक निमग्नता के कारण यदा-कदा यह सम्पर्क-संस्पर्श न्यून पड़ेगा। इसलिए पुत्र मधुछन्दा इस कार्य के लिए तत्पर रहेंगे। वत्स जेत एवं अघमर्षण इस कार्य में अपने पिता का सहयोग करेंगे। हमारी दिव्य दृष्टि कहती है कि यह महान् सावित्री साधना अवश्य सफल होगी। और धरती पर सतयुगी परिस्थितियाँ अवश्य विनिर्मित-विस्तारित होंगी। इतिहास साक्षी है कि महर्षि विश्वामित्र के सावित्री महाप्रयोग से धरती पर रामराज्य सम्भव हो सका। सतयुगी विधान क्रियान्वित हो सका। जिसकी रचना में अत्रिवंश की कन्या विश्वावारा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

⌘

10

कर्म सिद्धान्त की उद्गाता – ऋषि विश्ववारा

'वैज्ञानिक अध्यात्म की उद्गाता–ऋषि विश्ववारा कर्म सिद्धान्त पर अनुसन्धान कर रही थी। उनका यह अनुसन्धान कार्य इन्द्रिय प्रत्यक्ष, बौद्धिक ऑकलन, अन्तर्प्रज्ञा एवं समाधिजा प्रज्ञा के सभी तलों पर था। जड़वादियों के अन्वेषण कार्य प्रायः इन्द्रिय प्रत्यक्ष एवं बौद्धिक ऑकलन की सीमाओं में ही सिमटे रहते हैं। अपने ज्ञान की सीमा के विस्तार के लिए बहुत हुआ तो वे इन्द्रियों की सहायता हेतु दूरदर्शी–सूक्ष्मदर्शी जैसे विविध यन्त्रों का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन इसके आगे उनका कोई वश नहीं। जबकि वैज्ञानिक अध्यात्म के क्षेत्र में अनुसन्धान कार्य करने वाले इन्द्रियों के सहायक यन्त्रों के उपयोग के साथ बौद्धिक कुशलता, अन्तर्प्रज्ञा एवं समाधिजा प्रज्ञा का भी सकारात्मक सार्थक उपयोग करते हैं। इसके फलस्वरूप भौतिक पदार्थ एवं भौतिक ऊर्जाएँ ही नहीं प्रकृति का समस्त विचार, इसकी परत–दर–परत, आयाम–दर–आयाम उनके सामने पूर्णतया प्रत्यक्ष होते हैं। शोध की समग्र पद्धति है भी यही।

विश्ववारा इस पद्धति में निष्णात थीं। आयु की दृष्टि से अभी उन्होंने यौवन में प्रवेश किया ही था। गौरवर्ण, लम्बाकद, इकहरा शरीर, सौम्य मुख और नेत्रों में तेजस्विता व सरलता एक साथ छलकती थी। ऋषि कन्याएँ एवं राजकन्याएँ ही नहीं देव कन्याएँ भी उन्हें अप्रतिम सौन्दर्य का प्रतिमान मानती थीं। अग्नितत्त्व प्रधान देवलोक वासियों का सौन्दर्य भी उनके सामने निस्तेज था। लेकिन उनकी ऐश्वर्य भोग एवं विलास में तनिक भी रुचि न थी। उनका जन्म अत्रिवंश में हुआ था। महर्षि अत्रि एवं देवी अनुसूइया उनके माता-पिता तो नहीं थे। लेकिन इनका स्नेह-दुलार उन्हें खूब मिला था। इन्हीं के संस्कार एवं संरक्षण में इन्होंने ऋषि जीवन आरम्भ किया। और बहुत कम आयु में ऋग्वेद के पांचवे मण्डल के द्वितीय अनुवाक में पठित अट्ठाइसवें सूक्त की ६ ऋचाओं को साक्षात् किया। इसके बाद वे देवी अनुसूइया की प्रेरणा से कर्म सिद्धान्त के अनुशीलन में लग गयी। उनके आश्रम से थोड़ी ही दूर पर पयस्विनी के तट पर इनका कुटीर था। जिसमें रहकर वह कठिन तप एवं अविराम स्वाध्याय, अनुसन्धान में संलग्न रहती थी।

अपने निरन्तर प्रयत्न से इन्होंने जाना था कि क्रिया के प्रभाव तात्कालिक होते हैं, जबकि कर्म के प्रभाव जन्मों-जन्मों तक रहने वाले दीर्घकालिक। क्रिया में किसी भी तरह की इच्छा-भावना अथवा संकल्प का संयोग नहीं होता। इसी कारण यह पदार्थ अथवा चेतना के किसी भी तल पर क्यों न सम्पन्न हो, अपने स्थायी संस्कार नहीं विनिर्मित कर पाती। करने वाला इससे दीर्घकाल के लिए बंधता भी नहीं है। परन्तु कर्म में तो इच्छा, भावना, संस्कारों की प्रेरणा के साथ गहरे संकल्प की प्रधानता रहती है। इसीलिए कर्म केवल वही नहीं होते, जो स्वयं किए जाते हैं, वे भी होते हैं, जो औरों से कराए जाते हैं अथवा जिनके करने में अपनी सहमति एवं समर्थन होता है। कृत-कारित एवं अनुमोदित तीनों ही प्रकार के कर्मों के सुनिश्चित परिणाम होते हैं।

विश्ववारा ने यह अनुभव किया था कि जिन योनियों में जीव इच्छा–भावना एवं संकल्प करने में समर्थ नहीं होता, वहाँ उसके द्वारा होने वाली क्रियाएँ कर्म व कर्म बन्धन का स्वरूप नहीं ले पाती। बस ये तात्कालिक प्रभाव देकर समाप्त हो जाती हैं। जैसे कि मच्छर, मक्खी या कीड़े–मकोड़ों द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ अथवा फिर पशु–पक्षियों द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ। और सूक्ष्म स्तर पर भूतों, प्रेतों एवं पिशाचों द्वारा सम्पन्न होने वाली क्रियाएँ। जिन अवस्थाओं में, जिन योनियों में केवल क्रियाएँ होती हैं, कर्म नहीं बनते उन्हें भोग योनियाँ कहते हैं। इन योनियों में भ्रमण कर जीव केवल अपने प्रारब्ध भोग पूरे करता है, वहाँ उससे नए कर्म नहीं बन पड़ते। परन्तु मनुष्य योनि के लिए कर्म सिद्धान्त अति सूक्ष्म, गहन एवं जटिल है। यहाँ प्रारब्ध भोग भी पूरे होते हैं और नए कर्म भी बनते हैं। विश्वावारा की यह अनुभूति प्रकृति के विस्तार में पदार्थ एवं चेतना के विभिन्न तल पर होने वाली विभिन्न क्रियाओं के प्रत्यक्षीकरण का प्रमाण थी।

उन्होंने जब अपने इस निष्कर्ष से माता अनुसूइया को अवगत कराया तो वह हल्के से मुस्कराई और उन्होंने सूर्या सावित्री एवं हविधनि की ओर देखा। ये दोनों अभी कुछ ही देर पहले उनसे मिलने के लिए आए थे। इन्होंने भी विश्वावारा के कथन को सुना था और प्रभावित भी हुए थे। परन्तु विश्ववारा तो माता अनुसूइया की विशेषज्ञ टिप्पणी के लिए उत्सुक थी। उनकी इस उत्सुकता को परखते हुए भगवती अनुसूइया बोलीं– पुत्री! क्रिया केवल जड़ता के तल पर होती है, फिर वह पदार्थ हो या शरीर, परन्तु कर्म जड़ एवं चेतन दोनों ही तल पर एक साथ सम्पन्न होता है। परन्तु इसमें भी सामान्य जनों एवं योगियों–ऋषियों के जीवन में एक भेद है। सामान्य जन को इच्छा एवं भावना के साथ क्रिया करनी पड़ती है, तब कर्म पूर्ण होता है। परन्तु योगियों–ऋषियों की विचार चेतना या भाव चेतना में हल्की सी सकारात्मक या नकारात्मक तरंग उठते ही स्वत: बाह्य प्रकृति में घटना बन जाती है। इसलिए ऐसे लोगों का चिन्तन भी कर्म माना जाता है और उन पर कर्मफल विधान लागू होता है।

भगवती अनुसूइया के कथन में एक नए तथ्य का उद्घाटन था। जिसने विश्ववारा को सोचने के लिए प्रेरित किया। वह बोली माता! सामान्य जन यदि परिस्थितिवश अपने मनोनुकूल क्रिया न कर सके, परन्तु मनचाहा सकारात्मक या नकारात्मक सोचते रहे, तब ऐसे में क्या होगा ? उत्तर में देवी अनुसूइया बोली– पुत्री तुम्हारे प्रश्न में सार्थकता है। ऐसी स्थिति में उनकी सकारात्मक या नकारात्मक सोच अपने साथ जुड़े भावों की गहराई के अनुरूप चित्त भूमि पर भी संस्कार उत्पन्न करेगी। यह संस्कार भविष्य में अपने अनुरूप कर्म सम्पन्न होने की परिस्थितयाँ अवश्य उत्पन्न करेगा। और तब इस कर्म के अच्छे या बुरे परिणाम भी होंगे।

कर्म के परिणाम की क्या प्रक्रिया है ? यह प्रश्न हविधनि का था। वह सारी बातों को एकाग्र मन से सुन रहा था। माता अनुसूइया उसका समाधान करते हुए बोली– कर्मों के परिणाम की प्रक्रिया ही कर्म का फल विधान सम्पन्न करती है। दरअसल प्रत्येक कर्म के तीन घटक होते हैं– १. क्रिया, २. विचार– जिनकी सहायता से क्रियान्वयन की योजनाएँ बनती हैं और ३. भाव– जिसकी गहराई के अनुरूप संकल्प गहरे होते हैं। प्रत्येक कर्म पहले भाव तल में अंकुरित हो संकल्प बीज बनता है। फिर इसके अनुरूप योजनाएँ बनती हैं और तब क्रिया घटित होती है। इन तीनों ही तल पर प्रत्येक का अपना ऊर्जा स्तर होता है। कर्म पूर्ण होने पर तीनों तल पर ऊर्जाएँ संस्कार के ऊर्जा बीज के रूप में चित्तभूमि में संचित होती है। ये संचित संस्कार अपनी तीव्रता के अनुरूप परिपक्व प्रारब्ध के रूप में परिवर्तित होते हैं, जिसका भोग प्रत्येक के लिए सुनिश्चित और अनिवार्य होता है।

कर्म हों पर कर्मफल न हों, कर्म का बन्धन न हों। यह प्रश्न सूर्या सावित्री का था। जो अब तक मौन भाव से सारे तथ्यों का श्रवण कर रही थी। उसकी यह बात सुनकर देवी अनुसूइया बोली यह तब सम्भव है– जब स्वधर्म पालन हेतु आवश्यक कर्तव्य तो किए जाएँ, परन्तु उनमें कोई भी इच्छा, भावना या संकल्प न जुड़ा हो। यदि इच्छा, भावना का जुड़ाव हो भी तो केवल इतना कि मेरा प्रत्येक कर्म यज्ञ पुरुष

भगवान् नारायण के लिए अर्पित की जाने वाली यज्ञीय आहुति है। लौकिक कामनाओं, भावनाओं से विहीन यज्ञ भाव से यानि "इदं न मम्" के भाव से किए जाने वाले कर्म बन्धन का कारण नहीं होते। हालांकि इस निमित्त की जाने वाली क्रियाओं के तात्कालिक परिणाम अवश्य होंगे। माता अनुसूइया की इस निष्कर्षपूर्ण वाणी ने विश्वावारा के समक्ष अनुसन्धान के नए गवाक्ष खोले। परन्तु भगवती अनुसूइया अभी उन पर और भी कृपालु थी, वह बोलीं- पुत्री! क्रिया और कर्म की पदार्थ एवं चेतना की समस्त ऊर्जा प्रवाहों का प्रयोग केवल लोकहित में होना चाहिए और यह ऋषि दध्यङ्ग अथर्वण कुशलता से कर रहे हैं। वे निरन्तर कर्म करते हुए समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त हैं।

11

ऋषि अर्चन से लोक वन्दन

'वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रयोक्ता महर्षि अथर्वण के व्यक्तित्व में वैज्ञानिक, दार्शनिक, मनीषी, अध्यात्मवेत्ता, कवि एवं रहस्यवादी के विविध आयामों का एक साथ समन्वय था। उनके अनुसन्धान का क्षेत्र भी विलक्षण एवं सबसे अलग था। वह चेतना की चैतन्यता से पदार्थ की विविधताओं के प्राकट्य एवं पदार्थ की सूक्ष्मताओं में स्पन्दित चेतना की अभिव्यक्ति पर कार्य कर रहे थे। इस कार्य की शुरूआत में अनेकों विशिष्ट विभूतियों ने उन्हें रोका-टोका-समझाया। आखिर इतने महान् ऋषि होते हुए भी वह क्यों इस अजीबोगरीब अनुसन्धान में अपना समय नष्ट कर रहे हैं। ऋषि के रूप में वह त्रिलोक पूजित हैं। आर्यावर्त के सभी नरेश उन्हें देवों से भी अधिक सम्मान देते हैं। आखिर उन्हें अब और क्या चाहिए? हल्की सी मीठी हँसी हँसते हुए ऋषि अथर्वण ने कहा- "मैं आत्म सम्मान और आत्मपूजा नहीं बल्कि लोकसेवा का आकांक्षी हूँ। मैं आत्मोपयोगी नहीं लोकोपयोगी अनुसन्धान करना चाहता हूँ।"

सचमुच ही इन अद्भुत ऋषि के लिए लोकसेवा ही सब कुछ थी। लोक की पीड़ा से वह पीड़ित होते थे। लोक की व्यथा उन्हें व्यथित करती थी। किसी भी पीड़ा-परेशानी से उनकी आँखें छलक आती थी। मनुष्य हों या पशु-पक्षी सभी उनके अपने थे। मधुमती नदी के तीर पर उनका आश्रम था, जिसे आस-पास के ग्रामों एवं जनपदों के निवासी अथर्वा आश्रम कहते थे। यह आश्रम मधुमती नदी के किनारे विस्तार लिए सघन वन का एक हिस्सा था। ठीक-ठीक यह पता नहीं चलता था कि आश्रम वन का हिस्सा है या फिर वन ही आश्रम का एक भाग है। क्योंकि अथर्वा आश्रम के कुटीर एवं केन्द्र वन में स्थान-स्थान पर थे। आश्रम का मुख्य कुटीर जिसमें महर्षि अपनी पुत्री वाटिका के साथ रहते थे, वह नदी के तट के निकट था। आश्रम के अन्य केन्द्र एवं कुटीर तो पूरे वन प्रान्त में स्थान-स्थान पर थे। इनमें महर्षि के शिष्यगण रहते थे। जो उनके निर्देशानुसार विभिन्न शोधकार्यों में संलग्न थे।

ये सभी लोकसेवा के लिए संकल्पित थे। महर्षि ने शोधकार्य को एक नया नाम दिया था- ऋषि अर्चन। ऋषि अर्चन से लोकवन्दन- महर्षि और उनके शिष्यों का जीवन मंत्र था। आयु में यद्यपि अब वह वृद्ध हो रहे थे- परन्तु अभी भी उनमें युवाओं सा तेज, बल, उत्साह एवं श्रमशीलता थी। उनकी पुत्री वाटिका ने भी स्वयं को लोकसेवा के लिए अर्पित किया था। वह पिता के कार्यों में निष्ठावान सहयोगिनी थी। अभी कुछ ही दिनों पूर्व महर्षि ने एक निष्कर्ष निष्पादित किया था कि- पदार्थ विघटित होने पर भौतिक एवं सूक्ष्म चेतन ऊर्जा का निःसरण करता है। इसी तरह से ऊर्जा प्रवाह क्रम विशेष में संघनित होने पर विविध प्रकार के पदार्थों की सृष्टि करते हैं। महर्षि का कहना था कि पदार्थों की विघटन की क्रिया में यदि विशेष मुहूर्त में विशिष्ट मन्त्र साधना संकल्प के साथ किया जाय तो वर्षों में पूरा होने वाला कार्य एक दिन में ही सिद्ध हो सकता है। महर्षि सिद्ध मुहूर्त में किए जाने वाले यज्ञ कर्म को पदार्थ विघटन से ऊर्जा प्राप्ति एवं कार्य सिद्धि का सर्वोत्तम उपाय मानते थे।

ऋषि अथर्वण ने औषधियों, मणियों एवं मन्त्रों पर बृहद् अनुसन्धान कार्य किया था। इसी के साथ विविध वृक्षों, अलग-अलग धातुओं, विभिन्न स्थानों की मिट्टी, जल एवं अन्य पदार्थों पर भी उनके सूक्ष्म-अन्वेषण थे। महर्षि के इस कार्य में यूं तो उनका प्रत्येक शिष्य भागीदार था, परन्तु पुत्री वाटिका, शिष्य क्रतु, कौत्स एवं भृगारि का विशेष योगदान था। ये सभी महर्षि के साथ अपनी भूख-प्यास भूलकर अहर्निश सालों-साल श्रमरत रहे थे। ऋषि अथर्वण के अनुसार उनकी यह समवेत श्रमसाधना महान् फलदायी रही थी। उन्होंने पाया था कि अलग-अलग स्थान के ऊर्जा प्रवाह विशेष होते हैं। इसीलिए इनका विशेष मुहूर्त में विशेष ढंग से प्रयोग करने पर काम भी विशेष होते हैं।

उन्होंने यह भी जाना था कि समूची प्रकृति में प्रत्येक जीवित या मृत प्राणी, वनस्पति अथवा पदार्थ की विशेष गुणवत्ता है। ये सभी आणविक संरचना के अनुसार ब्रह्माण्ड व्यापी अनन्त ऊर्जा प्रवाहों में किसी खास प्रवाह को ग्रहण करते हैं। उनकी यह ग्रहणशीलता विशेष तिथियों, वारों, योगों, मुहूर्तों में असाधारण ढंग से बढ़ जाती है। रवि-पुष्य, गुरु-पुष्य योग, भौमवती, सोमवती, शनिवासरीय अमावस्याएँ और ऐसे ही अन्य योग व मुहूर्त सम्पूर्ण प्रकृति में अपने अनुकूल-अनुरूप पदार्थ एवं वनस्पत्तियों को असाधारण ढंग से प्राणवान तेजवान बना देते हैं। इसके साथ यदि मन्त्र साधनाएँ एवं समयोचित आचार-विचार का ढंग जुड़ा रहे तो ऊर्जा प्रवाह अतिविशेष हो जाता है। और तब असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में दरिद्रों को धनवान बनाया जा सकता है और मरणासन्न रोगी रोगमुक्त हो सकते हैं। मूढ़ भी इन प्रयोगों से प्रखर प्रज्ञावानों में परिवर्तित हो सकते हैं। इसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं।

ऋषि अथर्वण ने अपने शिष्य समुदाय के साथ मिलकर अब तक ऐसे असंख्य अनुसन्धान कर डाले थे। उन्होंने और उनके शिष्यों ने अनगिनत कलहपूर्ण दाम्पत्य जीवन में मधुरता घोली थी। न जाने कितने मूढ़ बालकों को प्रखर मेधा सम्पन्न किया था। रोग एवं रोगी में उनके लिए न तो कुछ असाध्य था और न

असम्भव क्योंकि महर्षि द्वारा प्रदत्त औषधियाँ, मणियाँ और मन्त्र असम्भव को सहज सम्भव बना देते थे। दीन-दु:खी, पीड़ित प्राणी उनमें अपना तारणहार देखते थे। महर्षि एवं उनके शिष्यों को भी उन पीड़ितों में अपने भगवान् नारायण नजर आते थे। यही कारण था कि ऋषि अथर्वण का आश्रम ही नहीं, बल्कि समूचा वन प्रान्त समूचे आर्यावर्त के ग्रामों एवं जनपदों के निवासियों के लिए तीर्थ, देवालय, चिकित्सालय सब कुछ बन गया था।

उस युग में महर्षि की यह लोकसेवा अनेकों को न भायी। जिन्हें उनका यह कार्य न भाया उनमें ऐश्वर्यशाली-सम्पदाशाली एवं विभूति-वैभव सम्पन्न लोग भी थे। ऐसे भी थे जिन्हें ज्ञानी एवं तत्त्ववेत्ता कहा जाता था। इनका कहना था कि महर्षि तत्त्व-चिन्तन एवं ऋषि कर्म से विमुख हो गए हैं। उन्हें महर्षि कहना उचित नहीं। ऐसों की बात सुनकर महर्षि कुछ कहते नहीं बस हंस देते। यदि कभी कुछ कहते भी तो केवल इतना ही कि मैं तो अपने अनुसन्धान कार्य से ऋषि अर्चन और लोकवन्दन करता हूँ। मुझे अगर कोई ऋषि न माने तो न सही पर मैं तो ऋषियों और सम्पूर्ण लोक का सेवक हूँ। महर्षि की यह विनयशीलता उनके साथ उनके शिष्यों में भी थी। महर्षि ने अपने समर्पित सेवाभावी शिष्यों से मिलकर प्रकृति के विविध घटकों एवं पदार्थ-प्राणी एवं वनस्पति के स्वरूप, स्वभाव, उनकी भौतिक एवं सूक्ष्म संरचना का गहन अध्ययन किया। साथ ही यह भी पता लगाया कि ये सब कब और कैसे किन योगों-संयोगों में किस तरह के अन्तरीक्षीय ऊर्जा प्रवाहों को धारण-ग्रहण कर प्राणवान बनते हैं। और इनकी लोकोपयोगिता क्या है ? महर्षि को उनके युग में भले ही उचित ढंग से न स्वीकारा गया हो; परन्तु यह वेद सत्य है कि उनके द्वारा प्रणीत अथर्ववेद के ५९८७ मन्त्रों में से २६९६ मन्त्र विशुद्ध अथर्वा ऋषि द्वारा दृष्ट हैं। उनकी ऋषि दृष्टि ने स्थूल के सूक्ष्म ऊर्जा स्वरूप को और सूक्ष्म ऊर्जा के पदार्थ रूप का अनुभव किया। ऊर्जा एवं शक्ति के बहुआयामी प्रवाहों की सूक्ष्म अनुभूति ऋषि वाक् ने भी की।

⌘

12

शक्ति के चेतन स्वरूपों की अनुभूति-अभिव्यक्ति

'वैज्ञानिक अध्यात्म की अध्येता ऋषि वाक् कौशिकी नदी के तट पर बैठी सन्ध्या वन्दन कर रही थी। सांझ ढल चुकी थी, पर अंधेरा होने में अभी समय था। भगवान् सूर्य धरती के पश्चिमी गोलार्ध में अपना प्रकाश वितरित करने के लिए प्रस्थान कर चुके थे। आकाश में हल्के-हल्के मेघों के बीच अस्त हो रहे सूर्य की लालिमा यदा-कदा झलक जाती थी। कौशिकी की लहरें हवा के कभी मन्द पड़ते-कभी तेज होते झोंकों के साथ अठखेलियाँ कर रही थी। आस-पास की पर्वत श्रृंखला के छोटे-बड़े शिखर प्रहरी की भांति सजग एवं सचेष्ट थे। किन्तु वहाँ खड़े वृक्ष झूम-झूम कर आनन्द मना रहे थे। ऋषि वाक् भी चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मंत्र का मनन करते हुए आदिशक्ति के मूल स्वरूप एवं विविध रूपों में उसकी अभिव्यक्ति का अर्थ अनुसन्धान कर रही थी। उनका ध्यान प्रकृति के इन बाह्य दृश्यों की ओर बिल्कुल भी न था।

अर्थ-अनुसन्धान करते हुए मन्त्र जप पूरा करने के पश्चात् जब उन्होंने सूर्यापस्थान पूर्ण किया, तब तक आकाश में मेघमालाएँ सघन हो चुकी थी। हवा के झोंके भी तेज हो चुके थे। कौशिकी नदी का जल वेग से बह रहा था। हवा के तीव्र हो चुके झोंके

उसमें रह-रहकर उद्वेलन उत्पन्न कर रहे थे। सन्ध्यावन्दन करके वाक् जब उठीं तो उनका ध्यान आकाश में छा चुके मेघों पर, कौशिकी के वेगपूर्ण प्रवाह एवं हवा की तीव्र होती गति पर गया। तभी आकाश में मेघों की महागर्जना के साथ विद्युत् की कड़क एवं चमक लगभग एक साथ ही उत्पन्न हुए। कुछ ऐसे जैसे कि महारूद्र ने धर्मद्वेषी असुरों के संहार के लिए अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर टंकार ध्वनि की हो। वह वहाँ खड़ी होकर चकित भाव से इसे देखती रही।

इन दृश्यावलियों को निहारते हुए उनके मन में अनायास ही एक साथ अनेकों जिज्ञासाएँ उत्पन्न हुई। मेघों की गर्जना का रहस्य क्या है ? विद्युत् में प्रकाश एवं ध्वनि कहाँ से आते हैं ? जल में प्रवाह एवं हवाओं में तीव्रवेग कौन उत्पन्न करता है ? ये विविध प्रश्न उनके मनोआकाश पर बाह्य आकाश की मेघमालाओं की तरह छा गए। इसी बीच जलवृष्टि भी होने लगी। उनका आश्रम निकट ही था, जहाँ पर वह अपने पिता महर्षि अम्भृण के साथ रहती थी। उनके जन्म के समय ही माता का देहान्त होने के कारण उनके पिता उनके लिए मां भी थे। जन्म से लेकर अब तक उन्होंने माता-पिता का दायित्व एक साथ निभाने के साथ शिक्षक एवं गुरु का दायित्व भी निभाया था। वह भी अपने पिता की योग्य पुत्री थी। तपश्चर्या, श्रेष्ठ संस्कार, सदाचरण, सेवा, कठिन श्रम एवं अनथक विद्याभ्यास में उन्हें प्रमाण माना जाता था। गुरुकुलों के आचार्य, तपस्वी साधकों के मार्गदर्शक, ऋषिकन्याओं के माता-पिता अपने शिष्यों एवं सन्तानों से वाक् का अनुसरण करने को कहते थे।

वही वाक् जब आश्रम परिसर में पहुँची तो देखा कि पिता अम्भृण द्वार पर ही खड़े थे। पिता ने भी अपनी षोडश वर्षीया पुत्री को थोड़ा थका-थोड़ा चिन्तित पाया। अन्तर्ज्ञानी पिता को तथ्य समझने में पल की देर न लगी। वह समझ गए कि उनकी बेटी को जिज्ञासाओं के बोझ ने थका दिया है। उन्होंने बड़े प्यार से पुत्री का माथा सहलाते हुए कहा- बेटी ! तुम भीग चुकी हो, पहले वस्त्र परिवर्तन करके कुछ ऊष्ण पेय ले लो। फिर हम लोग बातें करेंगे। वाक् ने थोड़ी ही देर में अपने पिता के निर्देशों का पालन कर लिया। फिर वे दोनों आश्रम के ग्रन्थागार में आ गए। जहाँ आर्ष

साहित्य के साथ लौकिक साहित्य का प्रचुर संकलन था। पिता–पुत्री दोनों आमने–सामने बैठे। इसके बाद ऋषि अम्भृण ने मुस्कराते हुए कहा– तुम्हारी सभी जिज्ञासाओं का हल एक शब्द में है– शक्ति। इसे ऊर्जा भी कहते हैं। यह सक्रिय एवं निष्क्रिय दोनों ही रूपों में रहती है।

निष्क्रिय शक्ति को सक्रिय करने के लिए वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक प्रयास किए जाते हैं। ध्यान रखो पुत्री! अखिल सृष्टि में ऐसा कोई कण या बिन्दु नहीं है– जो शक्ति से विहीन हो। पदार्थ के विविध रूपों में यह जड़ एवं निश्चेष्ट दिखने पर भी अन्तर अणुक बल के रूप में क्रियाशील रहती है। यही प्रकाश, ताप, ध्वनि, विद्युत्, चुम्बकीय, गुरुत्वीय, पवन, जल विद्युत्, सौर, भू–ऊष्मा के विविध रूपों में दिखाई देती है। नगण्य समझे जाने वाले परमाणुओं के नाभिक में भी यह प्रचण्ड एवं विस्फोटक रूप में व्याप्त है। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कोई ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती बस इसके रूप बदलते रहते हैं।

ऋषि कन्या वाक् अपने पिता के कथन को ध्यान से सुन रही थी। उनके पिता उनसे स्नेहपूर्ण स्वरों में कह रहे थे, अभी तो मैंने शक्ति या ऊर्जा के जड़ रूपों की चर्चा की है। इन भौतिक ऊर्जाओं की ही भांति सूक्ष्म एवं चैतन्य ऊर्जाएँ भी हैं। पुत्री! मैं तुम्हें अध्यात्म विज्ञान का एक महान् रहस्य बताता हूँ, जो पदार्थ विज्ञानी पता नहीं कब जानेंगे? पदार्थ के विभाजन से कणों की सृष्टि और कणों के विखण्डन से ऊर्जा की अभिव्यक्ति यह तत्त्व तो सभी जानते हैं। परन्तु जड़ ऊर्जा के अन्तराल में क्रमिक रूप से चेतन ऊर्जा के उच्चतर आयाम हैं, इसका अनुभव विरले ही कर पाते हैं। जड़ ऊर्जा के विखण्डन–विभाजन से ऐसा सम्भव होता है। प्राण ऊर्जा के विविध रूप, मनो ऊर्जा, भाव ऊर्जा, आत्म ऊर्जा की अभिव्यक्ति इसी क्रम में होती है। आन्तरिक अस्तित्त्व में इसका अनुभव कुण्डलिनी जागरण एवं इसके ऊर्ध्वारोहण के क्रम में होता है। बाह्य जगत् में इसकी अभिव्यक्ति एवं अनुभूति का विधान जो जानते हैं– वे बहुआयामी सृष्टि रचना में समर्थ होते हैं। हालांकि ऐसी सामर्थ्य या बल कुछ विरलों ने ही पाया है।

सामर्थ्य या बल क्या है तात्! विचारशील कन्या वाक् ने बड़े कोमल स्वरों में पिता से प्रश्न किया। बल, शक्ति या ऊर्जा की अभिव्यक्ति क्षमता को कहते हैं। जड़ हो या चेतन सभी को प्रकृति ने-भगवती आदिशक्ति ने उनकी आणविक या जैविक संरचना के अनुसार कम या अधिक रूप से यह क्षमता दे रखी है। वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक प्रयासों व प्रक्रियाओं से इसे न केवल बढ़ाया जा सकता है; बल्कि इसके विविध उपयोग भी किए जा सकते हैं। जिस तरह भौतिक विज्ञान की प्रक्रियाओं से विद्युत बल, वायु बल, नाभिकीय बल आदि के प्रयोग होते हैं, उसी तरह से विविध आध्यात्मिक प्रक्रियाओं से प्राणबल, मनोबल, आत्मबल आदि के चमत्कारी प्रयोग किए जाते हैं। शक्ति के इन जड़ एवं चेतन स्वरूपों एवं उनकी अभिव्यक्ति क्षमता के लिए आदिशक्ति की बहुआयामी साधना अनिवार्य है।

पिता महर्षि अम्भृण का यह कथन सुकोमल षोडश वर्षीया कन्या वाक् में महासंकल्प बनकर उतर गया। वह कौशिकी के ही तट पर महातप में तत्पर हो गयी। कठिन तप के प्रभाव से उनमें शक्ति के-ऊर्जा के नए-नए गवाक्ष खुलने लगे। वह विराट् ब्रह्माण्ड व्यापी एवं स्वयं के व्यक्तित्व में व्याप्त शक्ति के विविध आयामों का साक्षात्कार करने लगी। उनसे तदाकार होने लगी। शक्ति की सभी परतों, आयामों को पार करते हुए अन्ततः वह आदिशक्ति के मूल महिमामय प्रवाह को अनुभवकर उससे तदाकार हो कह उठी- **ॐ अहं रूद्रेभिर्वसु-भिश्चराम्यहमादित्यैरूत विश्वदेवैः।** मैं सच्चिदानन्द सर्वात्मा शक्ति रूद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवगणों के रूप में विचरती हूँ। ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के १२५ वें सूक्त में देवीसूक्त के नाम से जो आठ मन्त्र हैं, वे इन्हीं की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति हैं। उनकी यह वैज्ञानिक अध्यात्म की समर्थ शोध दृष्टि युगों की कड़ियों को अपने में जोड़ते हुए सुदीर्घ काल बाद महात्मा बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन में अभिव्यक्त हुई।

⌘

13

जीवन भर चले "बुद्ध" के वैज्ञानिक प्रयोग

भगवान् बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन में वैज्ञानिक अध्यात्म की अन्तर्धारा स्वत: ही प्रवाहित हो रही थी। पिछले कुछ काल से वह ज़ेतवन में थे। महास्थविर रेवत, भिक्षु महाकाश्यप एवं भदन्त मौदग्लायन भी इन दिनों वहीं उन्हीं के साथ थे। आनन्द ने तो तथागत की सेवा को ही अपना सब कुछ माना था। सो वह हमेशा ही भगवान् के साथ विहरते थे। तथागत की उपस्थिति जिज्ञासुओं के लिए चुम्बकीय प्रकाश थी। यह ऐसा अद्‌भुत समुज्ज्वल प्रकाश था, जिसमें आकर्षण एवं सम्मोहन एक साथ थे। इसके वशीभूत हो अनगिन ज़िज्ञासु नित्य ही बुद्ध वाणी का अमृतपान करने के लिए आते थे। तथागत भी अपने अनुदान-अवदान में कोई संकोच न करते थे। जो भी जिज्ञासुजन उनके पास आते, उनके बीच वह उदारतापूर्वक बोधि का प्रकाश वितरित करते। इसे पाकर जिज्ञासुओं को भी अनोखी तृप्ति-तुष्टि एवं शान्ति मिलती।

लेकिन हमेशा ही आने वाले आगन्तुकों में जिज्ञासु नहीं होते थे। कुछ ऐसे भी होते जो तथागत के तत्त्वज्ञान की परीक्षा लेना चाहते थे। कुछ का उद्देश्य उनसे

शास्त्र-चर्चा के नाम पर वाद-विवाद करना होता था। कुछ की रुचि धार्मिक रीतियों, मान्यताओं, परम्पराओं एवं कर्मकाण्डों में होती थी। भगवान् ऐसे से भी मिलते थे। और अपनी वाणी के प्रकाश से उनके हठ, भ्रम एवं आग्रह का अंधेरा दूर करते। जो बुद्ध को सचमुच में सुनते थे, समझते थे और उनके सान्निध्य में रहते थे, उन्हें अनुभव होता था कि शास्ता के चिन्तन में यदि वैज्ञानिक दृष्टि का प्रकाश है, तो व्यवहार में आध्यात्मिक जीवन मूल्य संवेदित होते हैं। और उनका चरित्र तो इन दोनों के सुखद समन्वय की समुज्ज्वल परिभाषा ही है। तथागत भी पल-पल, क्षण-क्षण उन सभी में अपने बोध की करूणापूर्ण धाराएँ उड़ेलते रहते थे।

इन क्षणों में भी वह कुछ यही कर रहे थे। इस समय वह जेतवन के पूर्वीभाग में अश्वत्थ की छांव में सुखासन पर बैठे हुए थे। उनके सामने अग्रिम पंक्ति में आर्य रेवत, महाकाश्यप एवं मौद्गलायन थे। पिछली पंक्तियों में अन्य भिक्षु-भिक्षुणियाँ बैठे थे। आनन्द उनकी दाहिनी ओर कुछ पीछे की तरफ हटकर खड़े थे। तथागत कह रहे थे- अध्यात्म विज्ञान के प्रयोग जीवन की प्रयोगशाला में करने होते हैं। दीर्घकाल तक निरन्तर प्रयोग और फिर इनके नियमित परीक्षण से ऐसे सुनिश्चित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, जिनसे सभी दुःखों का सदा के लिए निवारण हो सके। भगवान् अभी कुछ और कहते कि इतने में बाहर की ओर से आने-वाले एक तरूण भिक्षु ने धीमे स्वर में आनन्द से कुछ कहा। भिक्षु की बातें सुनकर आनन्द के माथे पर किंचित बल पड़े, किन्तु वह संयत रहे और उन्होंने शास्ता से निवेदन किया- भगवन्! विद्वान् ब्राह्मण आचार्यों का एक वर्ग आपसे मिलना चाहता है। उत्तर में बुद्ध मुस्कराए और उन्होंने कहा- उन्हें सत्कारपूर्वक लाओ।

थोड़ी देर में वे सभी विद्वान् आचार्य तथागत के समक्ष आसनों पर बैठ गए। तथागत ने मधुर वचनों से उनका स्वागत किया, कुशल क्षेम पूछी और कहा- आज्ञा करें आचार्यगण! उन आचार्यों में एक वरिष्ठ वृद्ध आचार्य ने कहा, हम सब आज्ञा करने नहीं प्रश्न करने आए हैं। तथागत ने किंचित हंसते हुए कहा, मेरे लिए आप सब

विद्वानों का प्रत्येक आदेश शिरोधार्य है। बुद्ध के विनम्र कथन के प्रत्युत्तर में विद्वान ब्राह्मण तनिक नम्र तो हुए परन्तु अहंता की कठोरता उनमें अभी भी थी। आत्मा एवं ईश्वर के बारे में आपका क्या विचार है ? हम सबने यह भी सुना है कि आप वेदों को, शास्त्रों को, ऋषियों के ज्ञान को नकारते हैं। वृद्ध आचार्य के इस उत्तेजित कथन के उत्तर में बुद्ध शान्त स्वर में बोले- देव! हम विचारों का वाद-विवाद नहीं करते, बल्कि अपने अनुभव को व्यक्त करते हैं। रही बात वेदों की, शास्त्रों की एवं ऋषियों की तो मैंने उनकी प्रयोगधर्मिता को स्वीकारा है। मैंने स्वयं के जीवन में अध्यात्म विज्ञान के अनेकों प्रयोग किए हैं, और अभी भी ऐसे अनेकों युगानुकूल प्रयोगों को सम्पन्न करने का क्रम जारी है।

ऐसा कहकर वह थोड़ा रूके और कहने लगे- गीता में योगविद्या के अनुभवी आचार्य योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कहा है- **यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके। तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ २/४६ ॥** सब ओर परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर छोटे जलाशय में जितना प्रयोजन रह जाता है, अध्यात्म तत्त्व का अनुभव करने वाले ब्राह्मण का समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है। अर्थात् पोथियों में संकलित ज्ञान से अनुभव कहीं श्रेष्ठ है, फिर वह पोथी भले ही वेद क्यों न हो? इसलिए श्रेष्ठ एवं श्रेयस्कर यही है कि व्यर्थ के वाद-विवाद में उलझने की बजाय हम लोग आपस में अपने-अपने आध्यात्मिक प्रयोगों-परिणामों एवं निष्कर्षों के अनुभवों से एक दूसरे को लाभान्वित करें। बुद्ध के इस कथन के उत्तर में घण्टों-घण्टों धारा प्रवाह वेद-शास्त्रों के मन्त्रों को बोलने में निष्णात, संस्कृत भाषा में वाद-विवाद करने में सक्षम वे सारे आचार्य मौन रह गए।

देर तक यह चुप्पी छायी रही, तब बुद्ध ने विनम्रता से कहा- हे विद्वान् आचार्यगण! अध्यात्म दरअसल इस बहुआयामी मानव जीवन की, इसके कण-कण में समायी अनगिन शक्तियों की सम्पूर्ण अनुभूति एवं अभिव्यक्ति है। इस अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पर आधारित सरल-सहज-सरस एवं संवेदनशील आचरण

एवं व्यवहार की पद्धतियों का समाज में प्रवर्तन धर्म है। प्रत्येक युग में अध्यात्मवेत्ता महानुभावों ने यही किया है। वर्तमान युग में यही मैं कर रहा हूँ। विद्वान् आचार्यों को बुद्ध का यह कथन वैदिक ऋषियों की मन्त्रवाणी की तरह लगा। उनकी विनम्रता के वेगपूर्ण प्रवाह में इन आचार्यों का अहं कब का बह चुका था। वे सब के सब समवेत स्वर में एक साथ बोले- भगवन्! आप हमें जीवन का बोध कराएँ।

उत्तर में भगवान् ने विहँस कर कहा- आचार्यगण आप सभी विद्वान् हैं। आप को सत्य की समझ है। सबसे पहले पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि से जीवन की मूल समस्या खोजनी होगी? यदि आप इस मूल समस्या का अन्वीक्षण करेंगे तो पाएँगे कि जीवन की मूल समस्या - दु:ख है। भले ही इसके कारण एवं प्रकार कितने ही क्यों न हों? यदि दु:ख का अनुभव हो गया, तो दु:ख का मूल कारण भी अनुभव होगा, जो कि तृष्णा है। इन दोनों अनुभवों में पारगामी होने पर अन्वेषण-अनुसन्धान के महत्त्वपूर्ण बिन्दु के रूप में सामने आता है- दु:ख के निरोध या निवारण का उपाय। इसी उद्देश्य के लिए अध्यात्म विज्ञान के सभी प्रयोगों का विधान है। मेरा स्वयं का अनुभव कहता है, निर्वाण ही वह उपाय है, जिससे सभी दु:ख एक साथ, सदा के लिए शान्त हो जाते हैं।

इसके पश्चात् अध्यात्म विज्ञान का अगला एवं अन्तिम अन्वेषण बिन्दु है- दु:ख निरोध का मार्ग। मेरे अनुभव में यह अष्टांगिक है- १. सम्यक् दृष्टि- यानि कि जीवन को विवेकपूर्ण ढंग से देखना, २. सम्यक् संकल्प- अर्थात् अपने विचारों को सही रखना, ३. सम्यक् वाक् यानि कि वाणी को दोषमुक्त करना, प्रिय व हितकर बोलना, ४. सम्यक् कर्मान्त- अर्थात् सत्कर्म व निष्काम कर्म का मर्म समझना, ५. सम्यंक् अजीव- यानि अपनी आजीविका के साधनों को शुद्ध करना। किसी के नुकसान में अपना नफा न सोचना। ६. सम्यक् पुरुषार्थ- अर्थात् अपने सभी प्रयत्न व पुरुषार्थ सदा संवेदना के सूत्र में गुंथे रहे, ७. सम्यक् स्मृति- इसके द्वारा बोधयुक्त हो स्वयं के अनुसन्धान की चेष्टा करना एवं ८. सम्यक् समाधि- इसी अवस्था में

निर्वाण की प्राप्ति होती है। अध्यात्म विज्ञान का परम ध्येय भी यही है। इतना कहकर तथागत शान्त होकर मुस्कराने लगे। सुन रहे सभी जन एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूब गए। कुछ क्षण पश्चात् भगवान् बुद्ध ने मधुर स्वरों में एक वाक्य कहा- तीर्थंकर महावीर भी इन दिनों सत्यान्वेषण के कुछ ऐसे ही महत्त्वपूर्ण प्रयोग कर रहे हैं।

⌘

14

महावीर का अद्भुत स्यादवाद

भगवान् महावीर के उपदेशों में वैज्ञानिक अध्यात्म की व्यापक अभिव्यक्ति हो रही थी। त्रिलोक पूजित तीर्थंकर इन दिनों नालन्दा के श्रीपद्म उद्यान में थे। और इस समय वह सम्पूर्ण उदारता से देशना का दान दे रहे थे। सर्वज्ञ जिनेन्द्र कदम्ब वृक्ष की छांव में मिट्टी के चबूतरे पर आसीन थे। इस चबूतरे को आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र की कन्याओं ने गोमय से लीपकर सुगन्धित पुष्पों से सजाया था। भगवान् की बगल में तनिक पीछे की ओर हटकर पट्टगणधर गौतम खड़े थे। उनके मुख पर सतर्कता, सजगता एवं तत्परता के भाव थे। वह प्रभु के प्रत्येक इंगित एवं संकेत को सहजतापूर्वक समझने और उसे क्रियान्वित करने में सक्षम थे। सामने की पंक्तियों में सुधर्मा, सिद्धसेन, समन्त भद्र, हरिभद्र, पात्रकेसरी एवं श्रीदत्त आदि जिज्ञासु साधक बैठे थे।

इन्हीं के बीच मगध सम्राट बिम्बसार श्रेणिक एवं महारानी चेलना भी थी। पट्टगणधर गौतम ने इन्हें विशिष्ट आसन देने की बहुतेरी कोशिश की, पर ये किसी भी तरह नहीं माने। उलटे उनसे कहा- आर्य! यह किसी सम्राट की राजसभा नहीं

है, जहाँ धन या पद की ऊँच-नीच अथवा किन्हीं वैभव-विभूतियों की विशिष्टता, वरिष्ठता के आधार पर आसन दिये जाते हैं। यह तो तत्त्वज्ञानी तीर्थंकर की अनुग्रह सभा है। यहाँ की योग्यता तो विनयशीलता है। जो जितना विनयशील होगा, उसे उतना ही अधिक भगवान् का सान्निध्य-सामीप्य प्राप्त होगा। सम्राट की यह बात सभी को भायी। आज की इस सभा में मगध एवं वैशाली के ही नहीं, सुदूर क्षेत्रों के श्रेष्ठी, कृषक, कर्मकार, शिल्पी सभी वर्ग के लोग आए थे। इसमें विद्वान् और अनपढ़ सभी थे। किशोर, वृद्ध, पुरुष-नारी सब थे। न कोई आयु बन्धन था, न जाति बन्धन, स्त्री-पुरुष का भी कोई भेद न था। सभी को यही अनुभूति हो रही थी कि भगवान् हमारे हैं, अपने एकदम प्राणों से भी सगे।

उत्सुकता एवं जिज्ञासा के शैल शिखरों के बीच तीर्थंकर महावीर की वाणी जल प्रपात की भांति अजस्र-अबाध प्रवाहित हो रही थी। वह कह रहे थे- जीवन भ्रान्ति नहीं है, संसार माया नहीं है, यह तो आत्मा एवं सर्वात्मा की अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम है। यह अभिव्यक्ति उत्तरोत्तर जितनी सम्पूर्ण व समग्र होती जाती है, उतना ही इसका सौन्दर्य बढ़ता जाता है। आत्मा एवं सर्वात्मा की अभिव्यक्ति की सम्पूर्णता में ही जीवन एवं संसार के सौन्दर्य की सम्पूर्णता है। इसी में क्षण-क्षण प्रसन्नता व आनन्द की अनुभूति होती है। इस अनूठी अभिव्यक्ति का माध्यम है सत्चिंतन एवं सत्कर्म। इस ओर हम जितना भी बढ़ते हैं- प्रसन्नता और आनन्द भी उतना ही बढ़ते हैं। इसमें पांच बाधाएँ हैं। पहली बाधा है, विवेक का अभाव यानि कि मिथ्यात्व। दूसरी बाधा है- वैराग्य का अभाव, जिसकी वजह से राग, द्वेष पनपते हैं। तीसरी बाधा है- प्रमाद यानि कि सत्चिन्तन एवं सत्कर्मों को न करने की प्रवृत्ति। चौथी बाधा है- कषाय- जो लोभ, क्रोध, मान, माया का रूप लेकर आते हैं। और अन्तिम पांचवी बाधा है- मानसिक, वाचिक, कायिक क्रियाओं में विकृतियों व विकारों के योग।

तीर्थंकर की सरल-सुगम वाणी प्रकाश किरणों की भांति हृदय में उतर कर सब ओर प्रकाश विकरित कर रही थी। वह कह रहे थे- इन सभी बाधाओं को दूर करने का उपाय है- १. सम्यक् दर्शन- अर्थात् आध्यात्मिक सिद्धान्तों एवं प्रयोमों को सम्पूर्ण अन्तर्मन से स्वीकारना। २. सम्यक् ज्ञान- इनके तत्त्व को गहनता से आत्मसात कर लेना। एवं ३. सम्यक् चरित्र- इसके अन्तर्गत अपने को आध्यात्मिक सिद्धान्तों एवं प्रयोगों में इस कदर ढालना होता है कि समूचा जीवन ही अध्यात्म विज्ञान की परिभाषा बन जाए। ऐसा होने पर केवल ज्ञान होता है, जिसमें सत्ता एवं सत्य की सम्पूर्ण अनुभूति होती है। जबकि सामान्य अवस्थाओं में इसके सापेक्षिक अनुभव ही हो पाते हैं। भगवान् महावीर का यह कथन आर्य सुधर्मा को कुछ कम समझ में आया। उन्होंने विनम्र स्वर में अनुमति लेकर प्रश्न किया- भगवन्! सत्ता एवं सत्य सम्पूर्ण है अथवा सापेक्षिक।

सुधर्मा के इस प्रश्न में गहरी तत्त्व जिज्ञासा थी। भगवान् महावीर उनके इस प्रश्न पर प्रमुदित हुए और बोले- वत्स! सत्ता एवं सत्य सम्पूर्ण भी है और सापेक्षिक भी। इसके बारे में तुम पहले यह जानो कि सत्ता की अनुभूति ही सत्य है। केवल ज्ञान की अवस्था में, समाधि की परमोच्च एवं सर्वोच्च अवस्था में ही अस्तित्त्व की अनन्त सत्ता की सम्पूर्ण अनुभूति हो पाती है। केवल उसी अवस्था में सत्ता के सत्य का सम्पूर्ण अनुभव होता है। अन्य सामान्य अवस्थाओं में कभी इसका एक पहलू अनुभव होता है, तो कभी दूसरा। इसलिए ऐसी दशा में सत्ता एवं सत्य सदा सापेक्ष ही बने रहते हैं। इस सापेक्षवाद को अनेकान्तवाद भी कहते हैं।

सुनने वाले सभी अनुभव कर रहे थे कि भगवान् महावीर के अनुभव में कहीं भी निषेध या नकार नहीं है। उनके अनुभवजनित ज्ञान की अनन्तता में सभी के लिए समुचित स्थान है। वह जहाँ बैठे थे, उसी चबूतरे के एक कोने पर मिट्टी का घड़ा रखा था। उन्होंने उस घड़े की ओर देखा, फिर तनिक मुस्कराए और उन्होंने सुधर्मा से पूछा- बोलो वत्स! क्या यह पात्र तुम्हें अनुभव हो रहा है ? उत्तर में सुधर्मा

ने कहा- हाँ भगवन्। तीर्थंकर विहंसकर बोले- यह ज्ञान का, बोध का एक आयाम है- १. स्यात् अस्ति- यानि कि शायद हाँ। इतना कहते हुए उन्होंने उस घड़े को उठाकर अपनी ओट में कर लिया और पूछा- घड़े के बारे में अब तुम्हारी दृष्टि क्या कहती है। उत्तर में सुधर्मा ने कहा- भगवन्! अब मैं घड़ा अनुभव नहीं कर पा रहा हूँ। महावीर फिर हंसे और बोले- वत्स! यह ज्ञान का दूसरा आयाम है- २. स्यात् नास्ति- यानि कि शायद नहीं।

इसके बाद उन्होंने सुधर्मा से फिर पूछा- वत्स! तुम क्या पूरी तरह आश्वस्त हो कि घड़ा नहीं है। सुधर्मा बोला- भगवन् हाँ भी और नहीं भी। क्योंकि भले ही मैं घड़े को नहीं देख पा रहा हूँ, परन्तु घड़ा कहीं तो है इसलिए हाँ, परन्तु मैं उसे इस समय नहीं देख पा रहा हूँ- इसलिए नहीं। इस पर भगवान् बोले-वत्स यह बोध का तीसरा आयाम है ३. स्यात् अस्ति-नास्ति। यानि कि शायद हाँ भी, शायद नहीं भी। महावीर पुनः बोले- क्या तुम अपने अनुभव को ठीक-ठीक कह सकते हो? सुधर्मा बोला- नहीं भगवन्! तीर्थंकर ने कहा यही ज्ञान का चौथा आयाम है- ४. स्यात् अवक्तव्यम्-सत्य अवक्तव्य है। सुधर्मा एवं तीर्थंकर प्रभु के बीच हो रहा यह वार्तालाप अब सभी को रुचिकर एवं प्रिय लगने लगा। भगवान् हंस रहे थे। अब वह बोले सुधर्मा क्या तुम अपने कथन पर अटल हो। सुधर्मा ने कुछ देर सोचा फिर बोला- भगवन् घड़ा कहीं तो है लेकिन उसके बारे में ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता है। अब की बार महावीर हंसे नहीं बस गम्भीरता से बोले- यह ज्ञान का पांचवा आयाम है- ५. स्यात् अस्ति च अवक्तव्यम्, यानि कि सत्ता का सत्य है तो पर उसे ठीक से नहीं कहा जा सकता।

सुधर्मा के साथ सिद्धसेन, समन्तभद्र सहित अन्य सब भी भगवान् के कथन को आत्मसात कर रहे थे। अबकी बार उन्होंने सिद्धसेन से पूछा- वत्स घड़े के बारे में तुम कहो। सिद्धसेन ने कहा- भगवन्! घड़ा इस समय आँखों के सामने नहीं है, उसके बारे में कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। इस पर भगवान् महावीर

बोले- यह ज्ञान का छठा आयाम है- ६. स्यात् नास्ति च अवक्तव्यम्, यानि कि वस्तु नहीं है और अवक्तव्य है। इसके बाद उन्होंने समन्तभद्र की ओर इंगित करके पूछा- वत्स! अब तुम घड़े के बारे में कुछ कहो। समन्त भद्र थोड़ा हिचकिचाते हुए बोले- भगवन् घड़ा है, लेकिन मेरी आँखों के सामने नहीं होने कारण नहीं है। इसलिए है और नहीं है, इसके बारे में कुछ ठीक से नहीं कहा जा सकता। तीर्थंकर समन्तभद्र के हिचकिचाने के कारण जोर से हंस पड़े और बोले- यह ज्ञान का सातवां आयाम है ७. स्यात् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम्। यानि कि सत्ता और उसका सत्य है भी नहीं भी है और इसके बारे में ठीक से नहीं कहा जा सकता।

इतना कहने के बाद वह तनिक गम्भीर हुए और बोले- सत्ता और उसके सत्य अनुभव के बारे में स्यात् कहना उनके सापेक्षिक होने का प्रतीक है। सामान्य दृष्टि में ये सापेक्षिक ढंग से ही अनुभव होते हैं। यह सापेक्षिता सप्तआयामी है। परन्तु केवल ज्ञान में समाधि के सर्वोच्च शिखर पर ये सभी स्यात् समाप्त हो जाते हैं। और सत्ता एवं सत्य की सम्पूर्ण अनुभूति होती है। स्याद्वाद यानि कि सापेक्षितावाद के इस अद्भुत वैज्ञानिक सिद्धान्त को प्रकट करने के बाद भगवान् एक पल के लिए मौन हुए फिर बोले- सापेक्षिता से ऊपर उठकर सत्ता और सत्य के सम्पूर्ण अनुभव के लिए आध्यात्मिक ऋषियों की वैज्ञानिक देन योगविज्ञान की प्रक्रियाओं को अपनाना पड़ता है।

⌘

15

स्वयं में प्रतिष्ठित कर अनुशासित करता है योग

आध्यात्मिक ऋषियों की वैज्ञानिक देन- योग विज्ञान के अध्ययन, अनुशीलन, अनुसन्धान-अन्वेषण में महर्षि ने स्वयं को भुला दिया था। पूरे विश्वविद्यालय में ही नहीं बल्कि समूचे भारत देश में इसकी चर्चा होने लगी थी कि महर्षि योगविज्ञान पर विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण प्रयोग इन दिनों कर रहे हैं। उनके कठिन तप, विलक्षण मेधा, असाध्य को साधने वाली उनकी योग साधना और सबसे बढ़कर उनके सत्य संकल्प से सभी परिचित थे। यह सर्वविदित था कि यदि महर्षि ने कुछ कहा है तो वह अवश्य घटित होगा। उनका अमोघ संकल्प कभी विफल नहीं हो सकता। अभी पिछले वर्षों में जब वह पाणिनी के व्याकरण सूत्रों पर अपना महाभाष्य लिख रहे थे, तो उन्होंने पाणिनि के सूत्र ३/१/२६ के भाष्य में उदाहरण दिया- **पुष्यमित्रो यजते, पुष्यमित्रो या जयाते** तथा एक अन्य सूत्र ३/२/१२३ के भाष्य में उदाहरण दिया- **इह पुष्यमित्रं याजयामः**।

इस वर्तमान कालिक क्रिया प्रयोग तथा उत्तम पुरूष के बहुवचन में किए गए इस प्रयोग की उन दिनों व्यापक चर्चा हुई। क्योंकि तब पुष्यमित्र उनके गुरुकुल से विद्याध्ययन सम्पन्न कर मौर्य सम्राट बृहद्रथ की सेना में सामान्य पद पर नियुक्त हुए थे। उन दिनों सम्राट बृहद्रथ की कायरता के कारण यूनानी यवनों ने भारतभूमि को पदाक्रान्त कर रखा था। ऐसे में भला पुष्यमित्र क्या यजन करेंगे? महर्षि उन्हें किस महायज्ञ का यजमान बनाने वाले हैं? इन प्रश्नों को जब उनकी शिष्य कृतयशा ने पूछा, तो उन्होंने कहा- अश्वमेध यज्ञ के। वत्स पुष्यमित्र शीघ्र ही भारतभूमि से यूनानी यवनों को खदेड़कर अश्वमेध का यजन करेंगे। भला यह किस तरह से सम्भव होगा देव? इस प्रश्न की प्रतिक्रिया में महर्षि के वचन थे- जब देश पर शासन करने वाली शक्तियाँ, कर्त्तव्यविमुख, निस्तेज एवं अकर्मण्य हो जाती हैं, तब आध्यात्मिक शक्तियों को तो सचेष्ट व सचेत होकर अपने कर्त्तव्य पूर्ण करने होते हैं।

इसके बाद महर्षि पतंजलि ने कुछ नहीं कहा- बस वर्तमान से लगभग ३२०० वर्ष पूर्व काल की कलाओं के साथ घटनाक्रम प्रवर्तित परिवर्तित हुए। सम्राट बृहद्रथ के पतन के साथ यवनों का पलायन हुआ। और यह सब किया महर्षि के प्रिय शिष्य पुष्यमित्र शुंग ने। जिन्होंने भारत सम्राट होने के तुरन्त बाद अश्वमेध यज्ञ का यजन किया, जिसमें महर्षि पतंजलि ने आचार्य पद सम्भाला। इन्हीं महर्षि ने आचार्य अग्निवेश द्वारा अपने गुरु आत्रेय पुनर्वसु के नाम से लिखे शरीर चिकित्सा के ग्रन्थ 'आत्रेय संहिता' का भी संशोधन, परिमार्जन किया था। और उसे नाम दिया- 'चरक संहिता'। उनके शिष्यों ने जब उनसे पूछा- देव! आपने इस ग्रन्थ का नामकरण चरक संहिता क्यों रखा? तो वह हंस कर बोले थे- इस नाम में वेदों के महर्षियों के ज्ञानोपदेश- चरैवेति! चरैवेति!! की अनुगूंज है। जो गतिशील रहता है, वह निरोगी होता है, ज्ञानी बनता है, समृद्धि प्राप्त करता है।

वही महर्षि अपने जीवन के इस उत्तर काल में योगविज्ञान पर गहरे अनुसन्धान में लगे थे। उनके इस अनुसन्धान कार्य में उनके सहयोगी थे- गविष्ठिर, विश्वसाम,

कृतयशा एवं पौलोमी। ये सभी महर्षि के शिष्य थे। इनमें से गविष्ठिर एवं विश्वसाम गुरुकुल स्थापना के दिनों से ही महर्षि के साथ थे। कृतयशा एवं पौलोमी राजकन्याएँ थी। इन्होंने विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् दीक्षान्त के अवसर पर यह संकल्प किया था कि वे दोनों अपना सम्पूर्ण जीवन योग साधना के लिए समर्पित करेंगी। भला महर्षि से श्रेष्ठ मार्गदर्शक उन्हें और कहाँ मिलता। इन शिष्यगणों के साथ महर्षि विश्वविद्यालय के केन्द्र में बने कुलपति कुटीर में अपने अन्वेषण कार्य में संलग्न रहते थे। पर्याप्त विस्तीर्ण क्षेत्र में बना उनका यह कुटीर आवास से कहीं अधिक प्रयोगशाला व ग्रन्थागार था।

व्याकरण शास्त्र- ध्वनिशास्त्र में विशेषज्ञ होने के साथ ही महर्षि शरीर शास्त्र व चिकित्सा शास्त्र में प्रवीण थे। व्यवहार विज्ञान एवं मनोदशाओं की सूक्ष्मताओं को समझने में भला उनसे अधिक और कौन कुशल हो सकता था। उनकी इन सभी विशेषज्ञताओं का प्रभाव उनके इस शोध अध्ययन में झलकता था। उन्होंने ऋग्वेदकाल से लेकर महात्मा बुद्ध एवं तीर्थंकर के सम्पन्न हुए योग सम्बन्धी कार्यों को सूक्ष्मता से परखा था। उनकी यह जाँच-परख केवल बौद्धिक एवं तार्किक नहीं थी। उन्होंने इस पर अपने शिष्यों के साथ जटिल-कठिन प्रयोग सम्पन्न किए थे। व्यवहार पर, शरीर-आरोग्य पर, प्राण की प्रक्रियाओं पर, मन की सूक्ष्म संवेदनाओं पर, संस्कारों, कर्म समुदाय पर यहाँ तक कि प्रकृति एवं सृष्टि की व्यापकता में इसके प्रभावों एवं परिणामों को परखा था। इस क्रम में उनका कहना था कि योगविद्या व्यवहार-विचार एवं संस्कारों को क्रम से परिशुद्ध कर कैवल्य बोध देती है। स्वयं के स्वरूप में प्रतिष्ठा प्रदान करती है।

योग के प्रायः सभी ग्रन्थों में वर्णित, योग के प्रायः सभी मतों-पन्थों द्वारा सुझाए, सिद्ध योगियों, साधकों, सिद्धों द्वारा कथित योग के सम्पूर्ण सत्य एवं तत्त्व को अब उन्होंने सूत्रों में लिखना प्रारम्भ कर दिया था। इस कार्य को वह सच्चे विज्ञानवेत्ता की तरह कर रहे थे। इसमें किसी के किसी भी तरह के आग्रह, मत, विश्वास, श्रद्धा,

आस्था का कोई स्थान न था। बस प्रयोगों ने जिसे प्रामाणिक कहा वही उनके लिए प्रामाणिक था। समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद एवं कैवल्यपाद के इन चार चरणों में विभाजित उनके इस ग्रन्थ में क्रमशः ५१, ५५, ५५ एवं ३४ अर्थात् कुल १९५ सूत्र हो रहे थे। उनके द्वारा प्रवर्तित यह योग का वैज्ञानिक विधान उनके लिए था, जो आस्तिक है, ईश्वर परायण है, उनके लिए भी था, जो नास्तिक निरीश्वरवादी है। इसके क्रियान्वयन में जाति, वर्ण, क्षेत्र, स्त्री-पुरुष का कोई प्रतिबन्ध न था।

महर्षि का यह ग्रन्थ पूर्ण हो चला था। इसकी पूर्णता वाले दिन सांझ के समय वह कुलपति कुटीर में टहल रहे थे। ढलते हुए सूरज की किरणें सरोवर मे खिले कमलों से लिपटकर सम्भवतः विदा मांग रही थी। उद्यान में खिले हुए सुगन्धित पुष्प अपनी सुरभि बिखेर रहे थे। महर्षि मौन हो सधे कदमों से टहल रहे थे। उनके मुख पर असीम सन्तोष था। कुटीर के द्वार से महर्षि के सहयोगी-शिष्यों ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठा दिया। इनमें से पौलोमी ने तनिक हिचक के साथ पूछा- आचार्यवर! आपके द्वारा रचित १९५ सूत्रों में प्रमुख एवं प्रधान सूत्र क्या है? वह प्रथम सूत्र है पुत्री- '**अथ योगानुशासनम्**' क्योंकि योग विज्ञान उन्हीं के लिए है जो योगविज्ञान के वैज्ञानिक प्रयोग का अनुशासन स्वीकारते हैं। और ये मूल वैज्ञानिक प्रयोग क्या हैं महर्षि? ये आठ हैं पुत्री। यह प्रयोग मूलतः अष्टांगिक हैं। १. व्यवहार के परिष्कार के लिए यम जिसमें सदाचार के सूत्र हैं। २. चिंतन के बिखराव-भटकाव के नियमन के लिए नियम, ३. शरीर को दृढ़-निरोग करने के लिए आसन, ४. प्राण के परिमार्जन के लिए प्राणायाम, ५. चिन्तन चेतना के साथ प्राण प्रवाह को अन्तर्लीन करने के लिए प्रत्याहार, ६. तत्त्व को, सत्त्व को एवं सत्य को धारण करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए धारणा। ७. धारणाओं में निमग्न होने के लिए ध्यान। एवं ८. ध्यान के द्वार से प्रवेश कर सत्य में, स्वयं के स्वरूप में प्रतिष्ठित होने के लिए समाधि।

हम सब आपका सान्निध्य पाकर धन्य हैं। सभी शिष्यों के समवेत स्वर में ऐसा कहने पर महर्षि ने कहा- मेरे बच्चों! मैं तुम सबके प्यार भरे सहयोग के लिए आभारी हूँ। तभी उन सबने महर्षि को चकित करते हुए ये पंक्तियाँ पढ़ी-

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा,
मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽयाकरोतं प्रवरं मुनीनां,
पतंजलिं प्राजंलिरानतोऽस्मि॥
पातञ्जलिमहाभाष्य चरक प्रति संस्कृतै।
मनोवाक्यायदोषाणं हन्त्रे ऽहिवतये नमः॥

जिन्होंने योग से चित्त के, सूत्रों के पदभाष्य से वाणी के, वैद्यकशास्त्र की रचना से शरीर के मल को दूर करने का विज्ञान रचा है, उन मुनिश्रेष्ठ पतंजलि को हम सभी हाथ जोड़कर नमन करते हैं। पतंजलि सूत्र, महाभाष्य एवं चरक संहिता की शोध कर जिन्होंने मन, वाणी एवं काया के दोषों का निवारण का विज्ञान रचा है, उन शेषावतार महर्षि पतंजलि को नमन है। इन पंक्तियों को सुनकर महर्षि ने अपने शिष्यों को स्नेह भाव से देखा और कहा- अभी आवश्यकता तन्त्र के वैज्ञानिक रहस्यों को उद्घाटित करने की है।

⌘

16

व्यष्टि एवं समष्टि में प्रवाहित ऊर्जा प्रवाहों का अध्ययन-अनुसन्धानः तन्त्र विज्ञान

आध्यात्मिक रहस्यों के विज्ञान तंत्र के महान् प्रयोगधर्मी साधक बिहार-मिथला क्षेत्र के दरभंगा रियासत के नरेश महाराज रमेश्वर सिंह का जीवन क्रम किसी विलक्षण अनुष्ठान से कम न था। महाराज नित्य दो बजे रात्रि को उठकर शय्या पर श्रीदुर्गासप्तशती का एक सम्पूर्ण पाठ कर लेते थे। उसके पश्चात् साढ़े तीन बजे स्नान आदि से निवृत्त होकर वैदिक संध्या एवं सहस्र गायत्री जप कर एक मन चावल का नित्य पिण्डदान करते थे। उसके पश्चात् पार्थिव शिवलिंग का पूजन ब्रह्ममुहूर्त में ही सम्पन्न कर भगवती के मन्दिर में आते थे। यहाँ पर वह तान्त्रिक संध्या करने के बाद तांत्रिक विधान के अनुसार पात्र स्थापन करते थे। इसके पश्चात् वह भगवती महाकाली का पूजन-आवरण पूजनादि, जप, पञ्चाङ्ग पाठ कर ककारादि सहस्रनाम से पुष्पाञ्जलि देते थे। तदुपरान्त कुमारी, सुवासिनी, बटुक, सामयिकों का पूजन-तर्पण करके महाप्रसाद ग्रहण करने के बाद दस बजे तक तैयार हो जाते थे।

एक घण्टे के विश्राम के बाद ११ बजे से साढ़े तीन बजे तक राज्य का कार्य देखते थे। इसके पश्चात् स्नानादि करके वैदिक संध्या व गायत्री जप सम्पन्न करके

प्रदोष काल में पार्थिव पूजन सम्पन्न करके निशाकाल में भगवती का सांगोपांग निशार्चन सम्पन्न करते थे। उनके निशार्चन के समय १०८ ब्राह्मण सप्तशती का पाठ एवं ५१ ब्राह्मण रूद्राभिषेक कर रहे होते थे। वैसे भी भवानी के महामन्दिर में सप्तशती पाठ, गायत्री का वैदिक एवं तांत्रिक विधि से जप एवं रूद्राभिषेक बिना क्षण-पल विराम के अनवरत होता रहता था। अपने सम्पूर्ण जीवन को महाअनुष्ठान में परिवर्तित करने वाले महाराज उच्च शिक्षित एवं महान् विद्वान थे। अंग्रेजी, फ्रेंच, बंगला, हिन्दी एवं संस्कृत पर उनका पूर्ण अधिकार था। तन्त्र शास्त्र के उच्चकोटि के विद्वान होने के साथ वेदान्त, सांख्य, योग एवं व्याकरण पर उनकी पारगामिता थी।

याचकों को मुँहमांगा दान देने वाले, प्रजावत्सल न्यायप्रिय नरेश की एक तीव्र इच्छा थी कि तन्त्र की वैज्ञानिकता से लोग सुपरिचित हों। इसीलिए इस वर्ष १९०८ ई. के जाड़े के दिनों में उन्होंने दरभंगा में विशिष्ट विद्वानों का सम्मेलन बुलाया था। इसमें विद्वान ब्राह्मणों एवं मनीषी साधकों के साथ विज्ञानवेत्ता वैज्ञानिक भी थे। वैद्यनाथ धाम के पं. प्रकाशानन्द झा, काशी के पं. शिवचन्द्र भट्टाचार्य, श्रीविद्या के महान् साधक पं. सुब्रह्मण्यमशास्त्री, कलकत्ते की आगम अनुसन्धान समिति के अध्यक्ष जॉन वुडरफ (पूर्ववर्ती आर्थर एव्लन) थे। ध्यातव्य हो कि जॉन वुडरफ को ही वह श्रेय जाता है कि उन्होंने तन्त्र के रहस्यों को सर्वप्रथम पश्चिमी जगत् में उद्घाटित किया था। सर जॉन वुडरफ के साथ ब्रिटेन के महान् चिकित्सा वैज्ञानिक इवान स्टीवेन्सन एवं भौतिक शास्त्री विलियम हॉपकिन्सन भी आए थे। इस अवसर पर महाराज के मित्र पटियाला नरेश महाराजा भूपेन्द्र सिंह भी पधारे थे। दरभंगा नरेश की मित्रता ने इन्हें भी शक्ति साधक बना दिया था। महाराज पिछले कई दिनों से स्वयं इन अतिथियों को दरभंगा के आस-पास तंत्र साधना स्थलों के दर्शन करा रहे थे। इसी क्रम में उनका सहरसा क्षेत्र भी जाना हुआ। यहीं पास महिषी में भगवती उग्रतारा पीठ है। जिसके मन्दिर का निर्माण महाराज के पूर्वज नरेन्द्र सिंह की पत्नी महारानी पद्मावती ने कराया था।

तीन-चार दिनों के इस भ्रमण में विदेशी विद्वानों ने तंत्र साधना के वैज्ञानिक सत्य को आत्मसात करना प्रारम्भ कर दिया था। इसलिए आज प्रातः इस विशेष सम्मेलन का प्रारम्भ हुआ तो वे भी उत्साहपूर्वक भागीदारी कर रहे थे। इसकी अध्यक्षता का भार पं. शिवचन्द्र भट्टाचार्य पर था, जिन्होंने स्वयं महाराज को तन्त्र साधना के लिए विशिष्ट मार्गदर्शन दिया था। इसी के साथ वह जॉन वुडरफ के भी दीक्षा गुरु थे। महाराज जी की प्रेरणा से ही सर जॉन वुडरफ ने पण्डित शिवचन्द्र भट्टाचार्य से शक्ति साधना की दीक्षा ली थी। वह कह रहे थे- तन्त्र दरअसल सृष्टि के विराट अस्तित्त्व में एवं व्यक्ति के स्वयं के व्यक्तित्व में प्रवाहित विविध ऊर्जा प्रवाहों के अध्ययन-अनुसन्धान एवं इनके सार्थक सदुपयोग का विज्ञान है। तंत्र मानता है कि जीवन एवं सृष्टि का हर कण शक्ति से स्पन्दित एवं ऊर्जस्वित है। यह बात अलग है कि कहीं यह शक्ति प्रवाह सुप्त है तो कहीं जाग्रत्। इस शक्ति की अभिव्यक्ति यूं तो अनन्त रूपों में है, पर इसकी मूलतः दशमहाधाराएँ हैं, जिन्हें दश महाविद्या कहा जाता है।

पं. शिवचन्द्र भट्टाचार्य तन्त्र के मूलभूत वैज्ञानिक सत्य को उद्घाटित कर रहे थे। वे बता रहे थे कि विराट् ब्रह्माण्ड में प्रवाहित ये शक्ति प्रवाह व्यक्ति में प्राण प्रवाह के रूप में प्रवाहित हैं। ब्रह्माण्ड में इन्हीं प्रवाहों से सृष्टि सृजन हुआ है। इसी के साथ उन्होंने निवेदन किया कि व्यक्ति में प्राण प्रवाह के रूप में प्रवाहित इन शक्ति धाराओं का स्वरूप विवेचन महाराज रमेश्वर सिंह करेंगे एवं ब्रह्माण्ड व्यापी इनके स्वरूप की विवेचना स्वयं महापण्डित सुब्रह्मण्यम् शास्त्री करेंगे। आचार्य शिवचन्द्र के इस निर्देश को थोड़ा संकोचपूर्वक स्वीकारते हुए महाराज उठे। उनका भरा हुआ गोल चेहरा, रौबदार मूँछे, औसत कद, गेहुँआ रंग, माथे पर श्वेत भस्म का ऊर्ध्व तिलक उन्हें भव्य बना रहे थे।

उन्होंने कहना प्रारम्भ किया- योग शास्त्र में वर्णित पाँच प्राण एवं पाँच उपप्राण ही दरअसल व्यक्ति के अस्तित्त्व में व्याप्त दश महाविद्याएँ हैं, जो व्यक्ति को

विराट् से जोड़ती हैं। इनमें आदिविद्या महाकाली एवं तारा अपान एवं इसके उपप्राण कूर्म के रूप में जननेन्द्रिय में वास करती हैं। षोडशी एवं भुवनेश्वरी प्राण एवं इसके उपप्राण नाग के रूप में हृदय में स्थित है। भैरवी एवं छिन्नमस्ता उदान एवं देवदत्त के रूप में कण्ठ स्थान में निवास करती हैं। धूमावती एवं बगलामुखी समान एवं कृकल के रूप में नाभि प्रदेश में स्थित हैं। मातंगी एवं कमला व्यान एवं धनञ्जय के रूप में मस्तिष्क में अवस्थित हैं। ऐसा कहकर महाराज थोड़ा रूके और बोले– मैंने महामाया के इन रूपों का स्वयं में इसी तरह से साक्षात्कार किया है।

महाराज के अनुभव परक ज्ञान ने सभी को विमुग्ध किया। आचार्य शिवचन्द्र का संकेत पाकर महाराज के बैठने के पश्चात् महापण्डित सुब्रह्मण्यम् शास्त्री उठे। इन्होंने अभी कुछ वर्षों पूर्व महाराज रमेश्वर सिंह को तन्त्र साधना की साम्राज्य मेधा नाम की विशिष्ट दीक्षा दी थी। उनका स्वर ओजस्वी था, उन्होंने गम्भीर वाणी में कहना प्रारम्भ किया– इस अखिल ब्रह्माण्ड में आदिविद्या महाकाली शक्ति रात्रि १२ से सूर्योदय तक विशेष सक्रिय रहती हैं। ये आदि महाविद्या हैं, इनके भैरव महाकाल हैं और इनकी उपासना महारात्रि में होती है। महाविद्या तारा के भैरव अक्षोभ्य पुरुष हैं, इनकी विशेष क्रियाशीलता का समय सूर्योदय है एवं इनकी उपासना का विशेष समय क्रोधरात्रि है। षोडशी जो श्रीविद्या है, इनके भैरव पञ्चमुख शिव हैं। इनकी क्रियाशीलता का समय प्रात:काल की शान्ति में है। इनकी उपासना काल दिव्यरात्रि है। चौथी महाविद्या भुवनेश्वरी के भैरव त्र्यम्बकशिव हैं। सूर्य का उदयकाल इनका सक्रियता काल है। इनकी उपासना सिद्धरात्रि में होती है। पाँचवी महाविद्या भैरवी है इनके भैरव दक्षिणामूर्ति हैं। इनका सक्रियता काल सूर्योदय के पश्चात् है। इनकी उपासना कालरात्रि में होती है। छठवी महाविद्या छिन्नमस्ता है, इनके भैरव कबन्धशिव हैं। मध्याह्न सूर्य का समय इनका सक्रियता काल है, इनकी उपासना काल वीररात्रि है।

धूमावती सातवीं महाविद्या हैं, इनके भैरव अघोररूद्र हैं। मध्याह्न के पश्चात् इनका सक्रियता काल है एवं इनकी उपासना दारूण रात्रि में की जाती है। बगलामुखी

आठवी महाविद्या हैं, इनके भैरव एकवक्त्र महारूद्र हैं। इनकी सक्रियता का समय सायं हैं। इनकी उपासना वीररात्रि में होती है। मातंगी नौवीं महाविद्या है, इनके भैरव मतंग शिव हैं। रात्रि का प्रथम प्रहर इनका सक्रियता काल है। इनकी उपासना मोहरात्रि में होती है। भगवती कमला दशम महाविद्या है। इनके महाभैरव सदाशिव हैं, रात्रि का द्वितीय प्रहर इनका सक्रियता काल है। इनकी उपासना महारात्रि में की जाती है। इन दश महाविद्याओं से ही सृष्टि का व्यापक सृजन हुआ है। इसलिए ये सृष्टिविद्या भी हैं।

इसी के साथ महाराज द्वारा आयोजित इस सम्मेलन में तन्त्रविज्ञान की व्यापक परिचर्चा होते-होते सांझ हो आयी। महाराज की विशेष अनुमति लेकर उनकी सायं साधना के समय जॉन वुडरफ के साथ आए वैज्ञानिकों ने महाराज का विभिन्न यंत्रों से परीक्षण किया। इस परीक्षण के बाद उन्हें आश्चर्यपूर्वक कहना पड़ा- कि तन्त्र साधक में प्राण विद्युत् एवं जैव चुम्बकत्व सामान्य व्यक्ति की तुलना में आश्चर्यजनक ढंग से अधिक होता है। उनके इस कथन पर महाराज रमेश्वर सिंह हँसते हुए बोले- दरअसल यह दृश्य के साथ अदृश्य के संयोग के कारण है। इसका वैज्ञानिक अध्ययन ज्योतिर्विज्ञान के अन्तर्गत होता है।

⌘

17

अतिमहज़्वपूर्ण है व्यक्ति के जन्म का क्षण

'वैज्ञानिक अध्यात्म का प्रकाशक है- ज्योतिर्विज्ञान। इसमें आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं द्वारा सहजता से स्वीकार की गयी गणित विद्या एवं प्राचीन महर्षियों द्वारा प्रवर्तित अध्यात्म विद्या- दोनों का संयोग है।' ऐसा कहते हुए स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस देव ने चेल महाशय को अपने पास ही तख्त पर बैठने का संकेत किया। चेल महाशय को उनके पास बराबर में बैठने में थोड़ा संकोच हुआ, परन्तु इसे उनका निर्देश मानकर बैठ गए। इन चेल महाशय का पूरा नाम था- रोहिणी कुमार चेल। इन दिनों वह कलकत्ता में थियेट्टर रोड पर रहते थे। ज्योतिर्विज्ञान में इनकी गहरी जिज्ञासा थी। कुछ जीवन की जटिल उलझनें भी थीं, जिनकी वजह से वह इन दिनों कुछ चिन्तित थे। इस प्रसंग में वह अनेकों से मिले भी, पर ठगे गए। जो हाथ में था वह भी गया और प्रकाश के स्थान पर अंधकार पल्ले पड़ा। इन्हीं दिनों इनके एक मित्र ने इनसे योगिराज विशुद्धानन्द की चर्चा की।

पहले तो उनका मिलने का मन नहीं हुआ, फिर सोचा चलो एक परीक्षा ही सही। यह सोचकर अपने मित्र मणीन्द्र कुमार भट्टाचार्य से सलाह लेकर जवाबी तार कर दिया। इसका उत्तर आया 'अभी नहीं'। परन्तु जिज्ञासा इतनी तीव्र थी कि रहा न

गया और गुष्करा के लिए चल पड़े। वहाँ पहुँच कर घर के बाहर बैठ गए क्योंकि दरवाजा बन्द था। थोड़ी देर बाद परमहंस देव द्वार खोलकर बाहर निकले। उनके शरीर से भीनी-भीनी कमल की सुगन्ध निकल रही थी। उनकी दोनों आँखें लाल किन्तु आश्चर्यपूर्ण तेज से आपूरित थी। तनिक ध्यान से देखने पर उन्हें अहसास हुआ कि परमहंस देव के शरीर से केवल कमल की सुगन्ध ही नहीं बल्कि हल्का-हल्का श्वेत स्निग्ध प्रकाश भी निकल रहा है। वह कुछ बोल पाते इसके पहले उन्होंने इनको अपने कक्ष में आने और तख्त में बैठने का संकेत किया।

इस संकेत के अनुसार वह हड़बड़ी में बैठ गए और अपने हैण्ड बैग से अपनी एवं अपनी पत्नी की कुण्डली निकालने लगे। उन्हें इस तरह हैण्ड बैग टटोलते हुए देख स्वामी विशुद्धानन्द ने कहा- रुको और उस कमरे की अलमारी से दो कुण्डली निकाल कर उनके हाथों में थमा दी। इनमें उनका और उनकी पत्नी का नाम- जन्म समय, लग्न चक्र, चन्द्र कुण्डली एवं विंशोत्तरी दशाएँ, अन्तर एवं प्रत्यन्तर दशाओं सहित थी। साथ ही इनमें उनके फलाफल भी वर्णित थे। अब तो रोहिणी बाबू थोड़ा नहीं कुछ ज्यादा ही चकित हुए-आखिर इन्हें मेरा एवं मेरी पत्नी का नाम आदि कैसे पता चला? पूछने पर उन्होंने कहा- जब मैंने योगदृष्टि से देखा कि तुम मेरे मना करने के बाद भी गुष्करा के लिए चल पड़े हो, तो मैंने बैठे-बैठे तुम दोनों की कुण्डली बना डाली। खैर यह सब छोड़ो और अपनी कुण्डली का मिलान कर लो। मिलान करने पर पत्नी की कुण्डली तो ठीक-ठीक मिल गयी। परन्तु रोहिणी बाबू की कुण्डली में जन्म-मुहूर्त में थोड़ा फर्क पाया गया।

यह फर्क दिखाने पर परमहंस देव बोले- चेल महाशय! मेरे द्वारा बनायी गयी कुण्डली ही सही है। इसका फलित पढ़ो और अपने जीवन की अतीत की घटनाओं से उनका मिलान करो। अब चेल बाबू ने अपनी कुण्डली को ध्यान से पढ़ा और पाया कि स्वामी विशुद्धानन्द सौ प्रतिशत सही कह रहे हैं। फिर वह सोचने लगे कि यह तो ठीक, पर मेरी कुण्डली भी ठीक बनी थी। उनके इस तरह से

सोचने पर वह बोले- नहीं वह सही नहीं है। उसमें जो जन्म का क्षण अंकित है यदि वह सही होता तो तुम भगवान् श्रीराम एवं भगवान् श्रीकृष्ण की तरह अवतार होते। और तब तुम मेरे पास न आए होते; बल्कि मैं तुम्हारे पास आकर तुम्हें प्रणाम करता।

इतना कहकर स्वामी विशुद्धानन्द महाराज उठ खड़े हुए और बोले- व्यक्ति के जन्म के क्षण का बहुत महत्त्व होता है। जन्म का क्षण यह बताता है कि जीवात्मा किन कर्मबीजों, संस्कारों को लेकर किन और कैसे ऊर्जा प्रवाहों के मिलन बिन्दु पर जन्मी है। जन्म का क्षण इस विराट् ब्रह्माण्ड में व्यक्ति को, उसके जीवन को एक स्थान देता है। यह कालचक्र में ऐसा स्थान होता है, जो सर्वथा अपरिवर्तनीय है। स्वामी विशुद्धानन्द जब ये बातें बोल रहे थे तो ऐसा लग रहा था जैसे कि वे उस कमरे में नहीं बल्कि ब्रह्माण्ड के बीचों बीच खड़े हों, और सब कुछ साफ-साफ स्पष्ट देख रहे हैं। उनकी आँखों से ऋषि का तेज झलक रहा था। वह कह रहे थे- यह अखिल ब्रह्माण्ड भगवती आदिशक्ति की लीला है। इसमें अनगिन अनन्त बहुआयामी ऊर्जा धाराएँ प्रवाहित हैं, जो क्षण-क्षण, पल-पल एक दूसरे से सृष्टि के कण-कण में मिलती हैं। इनके मिलने के क्रम के अनुरूप ही सृष्टि, व्यक्ति, जन्तु-वनस्पति, पदार्थ, घटनाक्रम जन्म लेते हैं। इसी क्रम में उनका विलय-विसर्जन भी होता है। जिसे सामान्य भाषा में इन सभी की मृत्यु अथवा स्वरूप का रूपान्तरण भी कह सकते हैं।

ज्योतिर्विज्ञान के अन्वेषक महर्षियों ने इन ब्रह्माण्ड-व्यापी ऊर्जा प्रवाहों को चार चरणों वाले सत्ताईस नक्षत्रों, बारह राशियों एवं नवग्रहों में वर्गीकृत किया है। इनमें होने वाले परिवर्तन क्रम को उन्होंने विंशोत्तर, अष्टोत्तरी एवं योगिनी दशाओं के क्रम में देखा है। इनकी अन्तर एवं प्रत्यन्तर दशाओं के क्रम में इन ऊर्जा प्रवाहों के परिवर्तन क्रम की सूक्ष्मता समझी जाती है। अब कोई यदि गुष्करा या बर्दमान में प्रातः ४ बजकर १५ मिनट पर सन् १८९५ ई. में जन्मा है, तो इसके अनुसार कालचक्र में उसका स्थान निश्चित हो गया। इस स्थान का परिवर्तन अब मृत्यु तक

असम्भव है। अब काल परिभ्रमण के अनुसार ब्रह्माण्डीय ऊर्जा प्रवाह उसे अपने परिवर्तन क्रम के अनुसार प्रभावित करते रहेंगे। यह क्रम क्या और किस तरह है इसे राशियाँ एवं ग्रहों की युतियों, लग्नचक्र में उनकी स्थिति तय करती हैं। इसे विंशोत्तरी दशाओं के अन्तर-प्रत्यन्तर क्रम के अनुसार जाना जा सकता है। इसी क्रम में व्यक्ति की चित्तभूमि के संस्कार एवं कर्मबीज अंकुरित, उत्प्रेरित एवं अभिव्यक्त होते हैं।

इतना कहते हुए वह कुछ क्षण ठहरे फिर उन्होंने उस कमरे का एक चक्कर लगाया और फिर वहीं रखी एक कुर्सी पर बैठ गए और बोले- ज्योतिर्विज्ञान के बारे में अभी तक जो मैंने कहा वह सत्य का एक पहलू है। जिसे सुनकर लगता है कि सब कुछ अपरिवर्तनीय है। परन्तु इसे यदि सही ढंग से जान लिया जाय तो मनुष्य अपनी मौलिक क्षमताओं को पहचान सकता है, अपने स्वधर्म की खोज कर सकता है। और तब कालचक्र में अपनी स्थिति और प्रभावित करने वाले ऊर्जा प्रवाहों के क्रम को पहचान कर ऐसे अचूक साधना विधान अपना सकता है, जिनसे कालक्रम के अनुसार परिवर्तित होने वाले ऊर्जा प्रवाहों के क्रम उसे क्षति न पहुँचाएँ। जैसे व्यक्ति यदि सूर्य की परिक्रमा कर रही और अपनी धुरी पर घूम रही धरती की परिभ्रमण अवस्थाओं को जान ले तो वह धरती के विभिन्न स्थानों में होने वाली ऋतुओं व मौसम के बारे में जान सकता है। और तब वह अपनी खेती-फसलों, खान-पान, रहन-सहन का ऐसा निर्धारण कर सकता है कि प्रत्येक ऋतु और प्रत्येक मौसम उसे लाभ दे सकें।

ज्योतिर्विज्ञान के साथ साधना विज्ञान भी अनिवार्य ढंग से जुड़ा है। ज्योतिष की गणितीय व्यवस्था, नक्षत्रों, राशियों एवं ग्रहों के संयोग क्रम केवल व्यक्ति के जीवन में ऋतुओं एवं मौसम के परिवर्तन क्रम को बताते हैं। महादशाओं, अन्तर्दशाओं एवं प्रत्यन्तर दशाओं का यही रहस्य है। परन्तु इनमें से प्रत्येक अवस्था में, परिवर्तन क्रम के अनुसार किस साधना विधान का चयन करना चाहिए, यह ज्योतिर्विज्ञान का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है। ग्रहों के मन्त्र, दान की विधियाँ, मणियाँ, औषधियाँ इसी

के लिए हैं। यदि इनका सूक्ष्म विधान न पता हो तो व्यक्ति को नित्य एक सहस्त्र गायत्री जप करना चाहिए। नवरात्रिकाल में चौबीस हजार का अनुष्ठान करना चाहिए। इसी के साथ वर्ष में कम से कम तीन बार चान्द्रायण व्रत के साथ सवालक्ष गायत्री अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए। यदि ऐसा किया जा सके तो व्यक्ति के जीवन में सभी ग्रह दशाएँ शुभफलदायक हो जाती हैं। अपनी बात पूरी कर उन्होंने तनिक हँस कर कहा- इस ज्योतिर्विज्ञान का गहरा आन्तरिक सम्बन्ध आयुर्वेद के आरोग्यशास्त्र से भी है।

18

जीवन विज्ञान : आयुर्वेद का ज्ञान

वैज्ञानिक अध्यात्म की उर्वरा में अंकुरित आयुर्वेद केवल चिकित्सा विज्ञान ही नहीं बल्कि जीवन विज्ञान भी है। इसके बहुआयामी अनुसन्धान के लिए आचार्य नागार्जुन एक बृहद् प्रयोगशाला का निर्माण करा रहे थे। कल-कल करती कृष्णा नदी के रम्य तट पर यह प्रयोगशाला श्रीशैल के शिखरों पर कुछ इस तरह से बनी थी, जैसे कि इस अनूठी प्रयोगशाला के विविध भवन श्रीपर्वत के शिखर सूत्रों में मणिमाला की तरह पिरोये हों। श्रीशैल पर भगवान् शिव के द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक विशिष्ट ज्योतिर्लिङ्ग मल्लिकार्जुन युगों से स्थापित है। आचार्य की प्रयोगशाला, उनका आश्रम इसी के सान्निध्य में था। आचार्य नागार्जुन ईसा की पहली शताब्दी में विदर्भ क्षेत्र के छत्तीसगढ़ नामक गांव में जन्मे थे। ब्राह्मण माता-पिता ने अपने इस प्रतिभाशाली पुत्र को किशोरवय में ही वेद-वेदांग, दर्शन, व्याकरण में पारंगत कर दिया था।

उच्च शिक्षा की लालसा उन्हें पाटलीपुत्र खींच लायी। उन दिनों पाटलीपुत्र विद्या में काशी से कहीं कम न था। अश्वघोष, आर्यदेव, वसबन्धु, असङ्ग एवं

दिङ्नाग जैसे धुरन्धर विद्वान यहीं पाटलिपुत्र में रहते थे। नागार्जुन ने अपने योगदान से पाटलिपुत्र की विद्याप्रभा को पूर्ण किया। कठिन तप, योग साधना, निरन्तर अध्ययन- अध्यापन, अनुसन्धान ने उन्हें प्रतिभा का पर्याय बना दिया। वह शून्यवाद के प्रवर्तक दार्शनिक, रसेश्वर तन्त्र के महान् रसायन शास्त्री, चौरासी महासिद्धों में अलौकिक महासिद्ध सरहपा के नाम से विख्यात् रहस्यमय तंत्रसिद्ध, पारद का औषधीय प्रयोग करने वाले प्रथम आचार्य, आयुर्वेद की औषधि, शल्य एवं रसायन विद्या में निष्णात कुशल चिकित्सक सब कुछ एक साथ थे। और इन सबसे भी बढ़कर वह ऐसे प्रचण्ड पराक्रमी देशभक्त थे, जिन्होंने अपने शिष्य शातवाहन को प्रेरित कर पराक्रमी शक शासक कनिष्क को पाटलिपुत्र से पलायन करने पर मजबूर किया। भारत भूमि एक बार फिर से आक्रान्ताओं की दासता से मुक्त हुई।

वही महासिद्ध योगी एवं तान्त्रिक, उच्चकोटि के दार्शनिक, विलक्षण चिकित्साशास्त्री, महान् रसायनज्ञ अपने शिष्य प्रतापी नरेश शातवाहन के अनुरोध से पाटलिपुत्र के गंगा तट से आकर यहाँ कृष्णा के किनारे आ बसे थे। उनकी प्रयोगशाला का निर्माण कार्य पूर्ण हो गया था। चिकित्सा विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, रसायन विज्ञान एवं योग तन्त्र विज्ञान की ऐसी समन्वित अद्भुत प्रयोगशाला अन्यत्र कहीं नहीं थी। आचार्य नागार्जुन ने यद्यपि भगवान् बुद्ध की करूणा से प्रेरित होकर बौद्धमत को स्वीकार कर लिया था, फिर भी उनकी आस्था भगवान् सदाशिव में यथावत् थी। यही वजह है कि उन्होंने अपनी प्रयोगशाला के लिए श्रीशैल का चयन किया था। प्रतापी नरेश शातवाहन भी अपने गुरु के इस सान्निध्य को पाकर गर्वित, दर्पित एवं सन्तुष्ट थे। वह प्रायः उनसे मिलने के लिए श्रीशैल पर आते रहते थे।

आज भी वह अपने महान् गुरु के दर्शन के लिए आए थे। आचार्य से मिलने के लिए कुछ दिनों पूर्व कमलशील, विमुक्त सेन एवं सुभूति भी आए हुए थे। ये तीनों ही अपनी लेखनी एवं वाणी से धर्म संवेदना का प्रचार करते थे। इनमें से सुभूति का स्वास्थ्य इन दिनों ठीक नहीं था। वे अपनी जिज्ञासुवृत्ति के कारण आयुर्वेद, आरोग्य

एवं चिकित्सा के बारे में कई प्रश्न पूछ रहे थे और आचार्य उन्हें समझा रहे थे। जिस समय नरेश शातवाहन वहाँ पहुँचे उस समय आचार्य कह रहे थे- मनुष्य शरीर हड्डियों में लिपटे हुए मांस और चमड़े का पिण्ड भर नहीं है। उसमें अनेकों रहस्यों का समावेश है। मनुष्य शरीर में नाड़ी संस्थान, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ, चक्र स्थान, उपत्यिकाएँ, नाड़ी गुच्छक ऐसे अवयव हैं, जिन्हें चमत्कार से कम नहीं कहा जा सकता। इन्हीं सबके माध्यम से ब्रह्माण्ड की ऊर्जा धाराएँ, प्राणों का प्रकाश प्रवाह इस शरीर में प्रवेश कर इसे जीवन्त, निरोगी एवं सुखी बनाए रखता है।

नरेश शातवाहन को आचार्य की ये बातें विलक्षण लगी। उन्होंने पूछा- इस ऊर्जा प्रवाह के शरीर में प्रवेश की रीति-नीति क्या है? इस प्रश्न पर आचार्य ने कहा- दरअसल यह स्थूल शरीर एवं लौकिक जीवन चित्त की ही अभिव्यक्ति है। इसलिए चित्त की अवस्था के अनुरूप ही नाड़ी संस्थान, चक्र एवं उपत्यिकाएँ आदि सक्रिय रहते हैं। यदा-कदा प्रारब्ध वश यदि चित्त के किसी दोषपूर्ण संस्कार ने इन प्रकाश एवं ऊर्जा द्वारों को अवरूद्ध कर लिया तो शरीर रोगी हो जाता है। ऐसे रोग, दुर्घटना एवं जीवन क्रम में अन्य व्यतिक्रम प्रारब्धवश होते हैं। परन्तु इसी के साथ खान-पान, रहन-सहन एवं आहार-विहार दोषपूर्ण होने से भी यह व्यतिक्रम होता है। किन्तु इस व्यतिक्रम को खान-पान व रहन-सहन में सुधार से एवं सामान्य औषधियों से ठीक कर लिया जाता है।

परन्तु प्रारब्ध जन्य रोगों का निदान एवं चिकित्सा कठिन है। इसीलिए आयुर्वेद को ज्योतिष एवं तंत्र के साथ अभिन्न रीति से जोड़ा गया है। ये तीनों मिलकर सम्पूर्ण एवं सफल चिकित्सा विज्ञान का निर्माण करते हैं। इसीलिए आयुर्वेद एक ऐसा महाविज्ञान है जिसमें जड़ विज्ञान एवं चेतन विज्ञान के तत्त्व एक साथ गुँथे हैं। ज्योतिर्विज्ञान आयुर्वेद के निदान पंचक को पूर्ण करता है और यह बताता है कि शरीर में जो रोग लक्षण हैं वे सब केवल खान-पान एवं रहन-सहन के व्यतिक्रम एवं प्रकृति विपर्यय के कारण हैं, या फिर इसके पीछे परिभ्रमणशील कालचक्र एवं

उससे उत्प्रेरित संस्कार-कर्मबीज कारण हैं। जिन्होंने शरीर में अवस्थित ऊर्जा प्रवाह एवं प्राण प्रवाह को धारण-ग्रहण करने वाले केन्द्रों को अवरूद्ध कर रखा है।

यदि ऐसा है तो आचार्य ? आर्य सुभूति के प्रश्न में थोड़ी चिन्ता की झलक थी। वह इन दिनों बीमार थे। सम्भवतः उनकी चिन्ता यह थी कि उन्हें किसी जटिल रोग या ग्रह योग तो नहीं घेर लिया है। उनकी इस चिन्ता पर आचार्य हँस दिए और बोले- वत्स सुभूति! तुम अपने लिए चिन्तित मत हो। तुम्हारा रोग तो केवल जीवनक्रम में व्यतिक्रम के कारण है, सामान्य पथ्य, परहेज एवं साधारण औषधियों से तुम पूर्णतः स्वस्थ हो जाओगे। आर्य सुभूति को तो अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया, मगर नरेश शातवाहन कुछ विशेष जानना चाहते थे। उन्होंने पूछा- तन्त्र का आयुर्वेद चिकित्सा में क्या स्थान है ? नरेश के इस प्रश्न को आचार्य ने गम्भीरता से लिया और बोले- राजन्! तन्त्र की क्रियाएँ विशेषतया प्रारब्ध जन्य रोगों को हटाने-मिटाने के लिए हैं। इन क्रियाओं से शरीर के ऊर्जा एवं प्राण को धारण-ग्रहण करने वाले केन्द्रों में आए हुए अवरोधों को हटाया जाता है, जिससे कि ऊर्जा एवं प्राण का अबाध प्रवाह शरीर में प्रवाहित रहे।

इसके अतिरिक्त तन्त्र की क्रियाओं से औषधियों को विशेष ऊर्जावान् एवं प्राणवान बनाया जाता है। तन्त्र क्रियाओं के संयोग से औषधियाँ इतनी अधिक प्राणवान हो जाती हैं कि इनकी एक खुराक को लेकर रोगी सदा के लिए भला चंगा हो जाता है। इस चमत्कार को चाहो तो तुम लोग अभी देख सकते हो। अवश्य भगवन्! सभी ने एक साथ समवेत स्वर में कहा। उनके ऐसा कहने पर आचार्य ने सुभूति को दी जाने वाली औषधि की एक पुड़िया ली। उसे हाथ में लेकर वह होठों में कुछ बुदबुदाए और फिर सुभूति को खिला दिया। आश्चर्य! इसे लेकर एक सप्ताह से बीमार सुभूति दो पलों में पूर्णतयः स्वस्थ हो गया। चिकित्सा के इस चमत्कार को प्रत्यक्ष अनुभव कर सबके सब उस महान् आचार्य को देखते रह गए, जिन्होंने दर्शन, तन्त्र, योग एवं आयुर्वेद तथा रसायन शास्त्र पर दर्जनों ग्रन्थों का प्रणयन किया था।

लेखक एवं कवि कमलशील तो भावुक होकर कह उठे -

त्यागी होकर भी निरन्तर जो स्वाधीनता का धनी।
वैरागी फिर भी रही रसमयी विद्या सदा संगिनी॥
बैरी व्यूह स्वदेश के जिस यती को देखते ही लुके।
श्री नागार्जुन के पवित्र चरणों में शीश मेरा झुके॥

अन्य सभी के साथ नरेश शातवाहन भी श्रद्धानत थे। वैज्ञानिक अध्यात्म के इन्हीं विचार बीजों का पश्चिमी देशों में कालान्तर में बीजारोपण सुकरात ने किया।

19

जीवन की प्रयोगशाला में जीवन देवता के उपासक सुकरात

पश्चिमी जगत् में वैज्ञानिक अध्यात्म का बीजारोपण करने वाले महात्मा सुकरात एथेन्स की गलियों में घूम रहे थे। उनके शरीर पर थोड़ा फट चुके पुराने से वस्त्र थे, जो सम्भवतः पिछले कई दिनों से न धुले जाने के कारण अब मैले दिख रहे थे। पाँवों में पहने हुए जूतों की स्थिति शरीर के कपड़ों से भी ज्यादा खराब थी। कई बार सिले जाने के बावजूद भी इनकी स्थिति फटेहाल थी। लेकिन इस सबका उन पर कोई असर नहीं था। उनके मुख पर वही मधुर हँसी थी और आँखों में वही प्रकाशपूर्ण तेज। आयु भले ही अब उनकी सत्तर साल की हो रही हो, परन्तु चुस्ती, फूर्ती, स्फूर्ति वही पचास साल पहले वाली थी। आयु बढ़ने का असर उनके शरीर पर थोड़ा बहुत जरूर हुआ था, परन्तु अन्तर्मन इससे सर्वथा अप्रभावित आनन्द का निर्झर बना हुआ था। जिसमें उनके आस-पास और साथ रहने वाले लोग सदा स्नान करते रहते थे।

अभी भी उनके साथ जीनोफेन, क्राइटो और प्लेटो थे। इन्हीं के साथ चलते हुए वह एक मण्डी में आ पहुँचे। जहाँ सब्जी-तरकारी, मिट्टी एवं धातु के बर्तन,

मूर्तियाँ, अनाज आदि कई चीजों की खरीद-फरोख्त हो रही थी। आगे बढ़ते हुए वह एक मूर्ति की दुकान पर आकर रूके और झुक कर उन्होंने एक मूर्ति उठाई फिर थोड़ी देर तक उसे देखते रहे। फिर उन्होंने उस मूर्ति को उसी स्थान पर रखा और जोर से हँस पड़े। उनके इस तरह हँसने पर साथ चल रहे प्लेटो ने विनम्रता से पूछा- आप इस तरह से हँसे क्यों मास्टर? मुझे अपना अतीत याद आ गया। तब मैं युवा था, मेरे मूर्तिकार पिता मुझे भी मूर्तिकार बनाना चाहते थे। तब मैंने उनसे कहा था कि मैं मूर्तियाँ गढूँगा तो अवश्य, परन्तु जीवित मानवों के जीवन की। मैं कलाकार बनूँगा तो अवश्य परन्तु यह कला जीवन जीने की होगी। यही कला मैं औरों को भी सिखाऊँगा।

महात्मा सुकरात को आया हुआ देख उस मण्डी की भीड़ उनके आस-पास जुटने लगी थी। इस भीड़ में ज्यादातर एथेन्स के युवा थे। पता नहीं युवाओं को इन वृद्ध हो चुके सुकरात में क्या आकर्षण नजर आता था। परन्तु सामान्य बल्कि सामान्य से भी किंचित कम अच्छी शक्ल-सूरत वाले सुकरात के व्यक्तित्व में एथेन्स के युवा एक जबर्दस्त चुम्बकीय आकर्षण अनुभव करते थे। यही बात वहाँ के शासक वर्ग को नहीं भाती थी। परन्तु इस बात से सुकरात को न कोई चिन्ता थी न डर। वह बड़े बेखौफ हो अपना काम कर रहे थे। अभी भी उन्होंने पास जुट चुके युवकों से पूछा- अच्छा तुममें से कोई यह बताओ कि वह कौन सा देवता है, जो अपनी पूजा से प्रसन्न होकर तुरन्त मनचाहा वरदान देता है? तुम यह भी बताओ कि उसकी पूजा की विधि क्या है? इन दो प्रश्नों ने उन युवकों के मन में विचारों की कई लहरें पैदा कर दी। वे परस्पर सोचने और चर्चा करने लगे, किसी ने एटलस का नाम लिया तो किसी ने पिटोरस का। देवताओं और इनकी पूजा विधियों की चर्चा वाद-विवाद में बदल गयी।

सुकरात इन्हें वाद-विवाद करता हुआ छोड़ उस भीड़ से थोड़ा अलग हटकर प्लेटो को समझाने लगे। प्रश्न से विचार जन्म लेते हैं। विचारों की निरन्तरता विचारशीलता को प्रकट करती है। विचारशीलता यदि गहरी एवं स्थायी हो तो जिज्ञासा का अंकुर फूटता है। जिज्ञासा की सच्चाई और सघनता में विवेक उत्पन्न होता है। यदि इस विवेक में तीव्रता व त्वरा बढ़ती जाय तो अन्तर्प्रज्ञा का प्रकाश फूटता है। इस

अन्तर्प्रज्ञा से उपजता है- जिज्ञासा के समाधान का अनुभव। यह अनुभव ही बोध है, यही ज्ञान है। सुकरात की ये बातें जीनोफेन एवं क्राइटो भी सुन रहे थे। सुकरात ने उन सबसे क़हा- मैंने जीवन की प्रयोगशाला में जीवन विद्या के, अध्यात्म विज्ञान के यही प्रयोग किए हैं। अन्यों को भी यही प्रयोगविधि सिखा रहा हूँ। इस प्रयोगविधि से जो ज्ञान मिला है, वह केवल कल्पनाओं एवं विचारों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि जीवन शैली को परिवर्तित कर स्वयं जीवन शैली बन जाता है।

सुकरात ये बातें करते रहे और युवाओं की भीड़ वाद-विवाद करती रही। इतने में उनमें से कुछ युवक उनके पास आए और उनसे बोले- ऐसा कोई देवता नहीं है। लेकिन तभी एक युवक ने पास आकर जोर से कहा- है एक देवता है- जीवन देवता। यदि सद्गुणों से इसकी पूजा हो, तो सभी वरदान तुरन्त मिलते हैं। और सबसे बड़ा सद्गुण क्या है युवक? ज्ञान ही सबसे बड़ा सद्गुण है। इस उत्तर को सुनकर सुकरात मुस्कराए और उन्होंने अर्थपूर्ण दृष्टि से प्लेटो की ओर देखते हुए कहा- अब मेरी शिक्षाओं को, जीवन में ज्ञान के प्रयोग के महत्त्व को एथेन्स का युवावर्ग समझने लगा है। इस ज्ञान के प्रयोग का विस्तार हुआ तो रूढ़ियाँ, मूढ़ताएँ एवं अन्धता नहीं रहेगी। यही तो अध्यात्म के वैज्ञानिक प्रयोग के उद्देश्य हैं, जिसे अब तुम सबको पूरा करना है। मेरी अन्तर्वाणी कह रही है- एथेन्स की गलियों में यह मेरी शिक्षा का अन्तिम दिन है। महात्मा सुकरात सम्भवतः कुछ और कहते इसके पहले उनके पीछे से अचानक आए एथेन्स के सैनिकों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया।

अदालत में उनपर मुकदमा चला। उन पर तीन आरोप लगाए गए। १. सुकरात ने राष्ट्रीय देवताओं की अवहेलना की है। २. उन्होंने राष्ट्रीय देवताओं के स्थान पर कल्पित जीवन देवता को स्थापित किया है। ३. उन्होंने एथेन्स के युवकों को पथभ्रष्ट किया है। उनसे कहा गया कि यदि वे अपनी गलती के लिए माफी माँगे और भविष्य में ऐसी गलती न करें तो उन्हें माफ किया जा सकता है। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। परिणाम में उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया। अपराध और दण्ड दोनों पर सुकरात हँस पड़े। फिर उन्होंने बड़ी शान्ति से कहा- ऐ निर्णय करने वालों! जब

तुम्हें मृत्यु लेने आए, तब तुम भी उसे उसी साहस के साथ स्वीकार करना, जैसे कि आज मैं कर रहा हूँ। और यह हमेशा याद रखना कि एक सच्चे इन्सान पर न जीवन में, न मृत्यु के बाद ही कभी कोई आपत्ति आती। परमेश्वर उसके भाग्य की ओर से कभी उदासीन नहीं होते।

जो दण्ड आज मुझे दिया गया है, वह दरअसल दण्ड नहीं दैवी योजना है। मेरी मार्गदर्शक अन्तर्वाणी ने मुझसे यही कहा है- मेरे जीवन विज्ञान के प्रयोग इसी तरह से अपना विस्तार करेंगे। फिर मेरा कार्य भी अब पूर्ण हो गया है। अब शरीर छोड़ना और क्लेश मुक्त होना ही मेरे लिए अच्छा है। मैं न आरोप लगाने वालों से रूष्ट हूँ और न दोषी ठहराने वालों पर कुपित हूँ। अब समय आ गया है कि हम लोग यहाँ से चल दें- मैं मरने के लिए और तुम जीने के लिए। परन्तु यह परमात्मा ही जानता है कि तुम्हारे जीवन और मेरी मृत्यु में कौन श्रेष्ठ है। फिर उन्होंने कुछ सोचते हुए कहा- मेरी यह मृत्यु-मृत्यु नहीं जीवन भर अध्यात्म विद्या के वैज्ञानिक प्रयोग करने वाले व्यक्ति के जीवन का अन्तिम प्रयोग है।

ऐसा कहकर वह कारागार की ओर चल पड़े। जिस दिन उन्हें विष दिया जाना था। प्रातः ही उनके शिष्य उनसे मिलने पहुँचे। वह बड़ी निश्चिन्तता से गाढ़ी नींद ले रहे थे। नियत समय पर कर्मचारी विष का प्याला लाया। उसे देखकर वह हर्षित और उत्साहित हो उठे, बोले- लाओ-लाओ। फिर उन्होंने शिष्यों से कहा- तुम लोग मेरे पास बैठो। हमेशा मैंने तुम्हें अपने जीवन के अनुभव सुनाए हैं, आज मृत्यु का अनुभव सुनाऊँगा। ऐसा कहते हुए उन्होंने विष का प्याला पी लिया। और शरीर में धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तनों को एवं अपनी मानसिक स्थिति को बताने लगे- कि अब उनका शरीर शनैः-शनैः प्राणहीन एवं निश्चेष्ट होता जा रहा है, परन्तु मन में आनन्द का दैवी प्रकाश फैलता जा रहा है। अन्त में उन्होंने कहा- अहा! मैं स्वर्गीय प्रकाश में प्रकाश रूप में अवस्थित हो रहा हूँ। शरीर की मृत्यु और इसके लिये दिया गया विष मुझे तनिक भी आघात नहीं पहुँचा सका। फिर उन्होंने प्लेटो की ओर देखते हुए कहा- मेरे इस अन्तिम प्रयोग के निष्कर्ष के बारे में सभी को यह बताना कि जीवन देवता की अपने सद्गुणों से, अपने ज्ञान से पूजा-अर्चना करने

वाले लोग न केवल अपने जीवन में शोक-सन्ताप मुक्त रहते हैं बल्कि मृत्यु के बाद, उससे भी कहीं उन्नत अवस्था में स्वर्गीय प्रकाश राज्य में आनन्दमय होकर रहते हैं। इसी के साथ उन्होंने आँखें मूँद ली। महात्मा सुकरात की शिक्षाओं का यही विचार बीज रेने देकार्ते के वैज्ञानिक विचारों में प्रखरता से अंकुरित हुआ।

⌘

20

सत्यान्वेषण पर ही टिका है यह समन्वय

दार्शनिक-आध्यात्मिक क्षेत्र में किए गए मौलिक वैज्ञानिक प्रयोगों ने रेने देकार्त के अनुसन्धान को नए आयाम दिए थे। उनके नवीन निष्कर्षों एवं सत्यान्वेषी व्यक्तित्व ने स्वीडन की अविवाहिता युवा रानी क्रिस्टीना को बेहद प्रभावित किया था। रानी क्रिस्टीना अपार वैभव एवं अनगिन सुख-साधनों से घिरे रहने के बावजूद आध्यात्मिक जिज्ञासु थी। सम्भवतः इसी कारण उसने अब तक विवाह नहीं किया था। देकार्त द्वारा किए गए आध्यात्मिकता एवं वैज्ञानिकता के समन्वय ने उसे बेहद प्रभावित किया था। कहीं अन्तर में उसकी कोमल संवेदनाएँ तीव्रता से झंकृत हुई थीं। इसी के साथ वर्षों से मनोभूमि में यूं ही पड़े हुए आध्यात्मिक जिज्ञासा के बीज में नवांकुरण भी हुआ था। उसने लगातार कई साल तक रेने देकार्त को अनेकों पत्र लिखे, उन्हें कई आकर्षक प्रस्ताव भी दिए। इन प्रस्तावों में एक प्रस्ताव यह भी था कि वह उनसे विवाह करना चाहती है।

इस पत्र को पढ़कर वह मुस्कराए फिर उन्होंने लापरवाही से कन्धे झटके और काम में लग गए। संयोग से उसी दिन सांझ को यह पत्र उनके शिष्य ग्यूलिंक्स के हाथों लग गया। वह मेलब्रांश के साथ उनके कक्ष की सफाई कर रहा था। ग्यूलिंक्स तो खैर वहीं हालैण्ड का ही रहने वाला था, पर मेलब्रांश अपने गुरु से मिलने फ्रांस से कुछ ही दिनों पहले यहाँ हालैण्ड आया था। इन दोनों को अपने गुरु को सुनना जितना अच्छा लगता था, उससे भी अच्छी लगती थी उनकी सेवा। मेलब्रांश बातों-बातों में यदा-कदा ग्यूलिंक्स के सौभाग्य की सराहना करता था। वह कहता था कि तुम सौभाग्यशाली हो जो महान् दार्शनिक-आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक देकार्त फ्रांस में जन्म लेने के बावजूद तुम्हारे देश हालैण्ड में रहते हैं। मुझे तो उनसे मिलने के लिए फ्रांस से यहाँ हालैण्ड आना पड़ता है। उसके इस कथन को सुनकर ग्यूलिंक्स आज बोला कुछ नहीं। बस चुपचाप अपने हाथ में लिए पत्र को पढ़ता रहा, जो उसने अभी थोड़ी देर पहले कमरे में रखी इस बड़ी टेबल के कोने से उठाया था।

क्या पढ़ रहे हो इतना मग्न होकर ? मेलब्रांश के इस प्रश्न के उत्तर में ग्यूलिंक्स ने बिना कुछ कहे उस पत्र को थमा दिया। अब मेलब्रांश ने भी उस पत्र को पढ़ा और दोनों ने एक दूसरे को देखा फिर कुछ निश्चय किया। रात्रि के खाने में उन दोनों ने एक साथ देकार्त से निवेदन किया कि उन्हें रानी का आग्रह स्वीकार कर लेना चाहिए। अच्छा तो तुम लोगों ने वह पत्र देख लिया है। इतना कहने के साथ देकार्त ने उन दोनों की ओर देखते हुए कहा- यदि तुम रानी द्वारा दिए गए शादी के प्रस्ताव की बात कर रहे हो, तो मेरा उत्तर है नहीं। क्योंकि मेरा सम्पूर्ण जीवन दार्शनिक एवं आध्यात्मिक अध्ययन में वैज्ञानिक प्रयोग करते हुए सत्यान्वेषण के लिए है। सत्यान्वेषी साधक को एकान्त, एकाग्र एवं साधनों व सम्बन्धों से रहित होना चाहिए। देकार्त के इस कथन में तपस्वी सन्त के आध्यात्मिक भावों की अनुगूँज थी।

इस पर वे दोनों कुछ मिनटों तक चुप बने रहे। फिर धीरे से उन्होंने बात बदलते हुए पूछा- सत्यान्वेषण की विधि क्या है ? विधि एवं प्रक्रिया तो सुदीर्घ है,

पर इसका प्रारम्भ सन्देह से होना चाहिए। देकार्त ने शान्त स्वर में कहा। लेकिन चर्च के पादरी तो विश्वास की बात करते हैं। लेकिन मेरी वैज्ञानिक दृष्टि को यह उचित नहीं लगता। क्योंकि विश्वास का मतलब हुआ कि बिना कोई प्रयोग किए, कोई भी अनुभव पाए बगैर सब कुछ यूं ही मान लेना। मेरे विचार में ऐसा विश्वास अनुभव के द्वार अवरूद्ध करता है, जबकि सन्देह अनुभव के लिए प्रेरित करता है। यह ठीक है कि विश्वास तनाव मुक्ति का झूठा अहसास देता है, पर यह भी सच है कि विश्वास से मानसिक सक्रियता समाप्त होती है और मिलती है एक चेतनात्मक सुषुप्ति। जबकि सन्देह मस्तिष्क की तंत्रिकाओं को झकझोरता है, जाग्रत् करता है। मानसिक सुषुप्ति को होश एवं सक्रियता में बदलता है।

इसी के साथ मेरा यह भी मानना है कि सन्देह को सकारात्मक व सक्रिय होना चाहिए। सन्देह करने का मतलब संशयी एवं शंकालु होना नहीं है। ऐसे लोग तो अपनी मानसिक उलझनों को बढ़ाकर स्वयं का विनाश कर लेते हैं। ऐसों से तो फिर विश्वासी ही अच्छे। सन्देह का परिणाम होना चाहिए मानसिक जागृति। इस जागृति से अंकुरित होनी चाहिए प्रश्नशील-विचारशील जिज्ञासा। इस जिज्ञासा को तृप्त करने के लिए किए जाने चाहिए वैज्ञानिक प्रयोग। इन प्रयोगों में जो अनुभव मिले उन पर विश्वास होना चाहिए। विश्वास को सन्देह के चरम परिणाम के रूप में प्रकट होना चाहिए, न कि इसे मानसिक निकम्मेपन की परिभाषा बन चेतना में अंधकार फैलाना चाहिए। देकार्त की वाणी ने ग्यूलिंक्स एवं मेलब्रांश की चेतना में नए गवाक्ष खोले। उन्हें अपूर्व सुख की अनुभूति हुई। वह अभी कुछ और कह पाते, इसके पहले देकार्त ने कहा कि मैं तो कहता हूँ कि तुम स्वयं पर भी संदेह करो। सोचो तुम हो भी या नहीं। यदि हो, क्योंकि विचार किया जा रहा है, तो विचार करने वाला तो होगा ही। यह जो भी है वह कौन है ? इन प्रश्नों को विश्वास के आधार पर नहीं अध्यात्म के वैज्ञानिक प्रयोगों के अनुभव के रूप में सुलझाओ। तब तुम्हें अपने रहस्य का साक्षात्कार होगा। इतना कहने के साथ उसने ग्यूलिंक्स एवं मेलब्रांश की ओर मुस्कराते हुए देखा। उसे लगा कि वे दोनों कुछ पूछना चाहते हैं। उसने कहा- तुम

संकोच न करो पूछो। वैसे भी मेरी विधि में सन्देह का स्थान है, संकोच का नहीं। यह कहकर वह जोर से हँस पड़ा।

देकार्त की इस निर्मल निर्झर की तरह प्रवाहित हँसी में इन दोनों की हिचकिचाहट एवं संकोच बह गए। उन्होंने कहा- आध्यात्मिक-दार्शनिक क्रियाओं व विचारों में वैज्ञानिक विधि की क्या आवश्यकता है? इसके उत्तर में देकार्त ने तनिक दृढ़ता से कहा- आवश्यकता है, बड़ी गहरी आवश्यकता है। मनुष्य जीवन स्वयं ही अध्यात्म एवं विज्ञान का संयोग है। मनुष्य न केवल जड़ है और न केवल चेतन। वह दोनों का मिलन है। उसका शरीर जड़ है तो आत्मा चेतन। जड़ के अध्ययन के लिए विज्ञान की आवश्यकता है तो चेतन का अनुसन्धान अध्यात्म से होता है। क्रियाएँ वह जड़ शरीर की सहायता से जड़ जगत् में करता है, तो उसके विचार, ज्ञान व अनुभव आदि चेतना में होते हैं। मनुष्य ही क्यों यह सम्पूर्ण जगत् भी तो जड़ प्रकृति एवं चेतन परमात्मा के संयोग से संचालित है। तब ऐसे में इनके सही अध्ययन-अनुसंधान के लिए भी विज्ञान एवं अध्यात्म का संयोग चाहिए। विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वय ही सत्यान्वेषण की सम्पूर्ण विधि है।

देकार्त के कथन में उसके अनुभव का सत्य ध्वनित था। वैसे भी ये दोनों जानते थे कि उनके गुरु ने केवल दर्शन का ही अध्ययन नहीं किया है। उन्होंने शरीर क्रिया विज्ञान, मनोविज्ञान, गणित, ज्योतिष, ब्रह्माण्ड-विज्ञान पर गहरे अध्ययन-अनुसन्धान किए हैं। ज्ञानवाही एवं क्रियावाही नाड़ियों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन उनकी महत्त्वपूर्ण देन है। उन्होंने केवल दर्शन को ही सन्देह की विधि नहीं दी, बल्कि पहली बार नाड़ी क्रिया तथा मानसिक प्रक्रियाओं के व्यवहार को स्पष्ट किया है। यथार्थ में उनके गुरु पश्चिमी जगत् में न केवल आधुनिक दर्शन के जन्मदाता हैं, बल्कि वे आधुनिक विज्ञान के भी प्रवर्तक हैं। इन विचार वीथियों में गुजरते हुए, वाणी के प्रवाह में प्रवाहित होते हुए रात्रि भोजन भी समाप्त हो गया। देकार्त ने पानी पीने के बाद नेपकीन से हाथ पोंछे और अपने शयन कक्ष में जाने के लिए उठे।

· · · · ·

इसी समय ग्यूलिंक्स एवं मेलब्रांश ने फिर से एक बार सम्भवतः अपनी समझ में अन्तिम बार स्वीडन की रानी क्रिस्टीना के आमंत्रण पर विचार करने के लिए उनसे अनुरोध किया। इन्होंने कहा कि आप उसके प्रेम एवं विवाह के प्रस्ताव को अवश्य ठुकरा दें, किन्तु आध्यात्मिक जिज्ञासा को अवश्य तृप्त करें। अपने शिष्यों की यह बात देकार्त को भा गयी। उसने विहँस कर अपनी स्वीकृति देते हुए अपने शिष्यों से कहा- कि तुम लोग रानी को सूचित कर दो कि वह मुझसे अपनी व्यक्तिगत बातों की नहीं बल्कि केवल दार्शनिक-आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक बातों पर ही चर्चा करेगी। साथ ही उसे सूर्योदय के समय मुझसे अध्ययन करना होगा, क्योंकि इसी समय ज्ञान की सच्ची उपासना का समय है। रानी क्रिस्टीना ने उनकी सभी बातें मान ली। सन् १६४९ ई. में वह स्वीडन गए। परन्तु दुर्भाग्यवश चार महीनों के बाद ५४ वर्ष की आयु में उनका देहावसान हो गया। परन्तु उन्होंने पश्चिमी जगत् को विज्ञान की जो नवीन दृष्टि दी, सुदीर्घ काल बाद उसका सुफल वैज्ञानिक ऋषि आइन्सटाइन के रूप में प्रकट हुआ।

21

सृजन संवेदना से ओत-प्रोत हो विज्ञान

वैज्ञानिक ऋषि-आइन्सटाइन सांझ होने के कुछ देर पहले से उदास बैठे थे। उनकी आँखें छलछलायी हुई थी। चेहरे पर पीड़ा की छाया स्पष्ट थी। वह धीरे से कुर्सी से उठे और कमरे की खिड़की के पास आकर बाहर की ओर देखा, सांझ का सूरज सम्भवत: अभी कुछ ही देर पहले अस्त हुआ था। आकाश में चहुँ ओर रक्ताभ लालिमा फैली हुई थी। यह देखकर उन्हें लगा जैसे कि सूर्य अस्त नहीं हुआ, मानवता अस्त हुई है। और आकाश में फैली हुई रक्ताभ लालिमा मानवता का लाल खून है, जो धरती पर न समा सकने के कारण आकाश में जाकर फैल गया है। बड़े थके हुए कदमों से वह वापस अपनी कुर्सी की ओर आए और बैठ गए। सामने के कलैण्डर पर नजर डाली। सन् १९४५ ई. के अगस्त महीने की नौ तारीख थी। तीन दिन पहले छ: तारीख को भी उन्हें ऐसा ही अनुभव हुआ था, जैसे कि किसी ने उनके कलेजे को चीर दिया हो। उस दिन उन्हें बड़ा गहरा दर्द और तीव्र छटपटाहट अनुभव हुई थी। जब उन्होंने रेडियो समाचार में यह सुना कि अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा शहर पर परमाणु बम गिरा दिया।

और आज तीन दिन बाद फिर से नागासाकी शहर पर परमाणु बम फेंका गया। इन भयावह आक्रमणों से तीन दिन में ही लाखों लोग मारे गए। सुना गया है कि इन परमाणु विस्फोटों से जो महाविनाशक ऊर्जा फैली उसने मौत का ऐसा महाताण्डव किया कि अब तक की सारी क्रूरताएँ कांप गय़ी। अब तक हुई सारी विनाशलीलाएँ दहशत से दुबक गयीं। परमाणु ऊर्जा की महाज्वालाओं से मकान-वस्तुएँ फटने-पिघलने लगे। भयावह गर्मी से भयभीत लोगों ने नदियों-तालाबों की शरण ली, परन्तु वहाँ का पानी भी बुरी तरह खौल रहा था। सो यहाँ कूदने वाले लोग भी उबलने लगे। पानी में रहने वाले जन्तु तो वहाँ पहले से उबल रहे थे। निरपराध पशु, हरे-भरे वृक्ष, जीवनदायी औषधीय पादप, सुगन्धित फूलों से लदे पौधे जहाँ के तहाँ जल-भुनकर राख का ढेर बन गए। समस्त जीवन को राख के ढेर में बदलकर इस परमाणु ऊर्जा का कोप शान्त नहीं हुआ है, बल्कि यह वहाँ के वातावरण के कण-कण में ऐसी फैल चुकी है कि आने वाले सैकड़ों सालों तक इसके विनाशक प्रभाव सामने आते रहेंगे।

इससे प्राणियों एवं वनस्पतियों के अनुवांशिक गुणों में ऐसी विकृति आएगी, जो आने वाली अनेकों पीढ़ियों में विकलांगता एवं रूग्णता का विष प्रकट करती रहेगी। परमाणु हमलों की जो खबरें आ रही थी, एक के बाद एक उनका जो सच लगातार सामने आ रहा था, उसे सुनकर सोचकर आइन्सटाइन की पीड़ा-विकलता एवं बेचैनी बढ़ती जा रही थी। इसकी तीव्रता को वह सहन नहीं कर सके और अपने मन के बहाव की दिशा बदलने के लिए उन्होंने पास में रखी वायलिन उठा ली। उसे बजाते हुए यह कोशिश करने लगे कि उसके दर्दीले स्वरों में अपने मन का दर्द घोल सके। परन्तु इसमें उन्हें सफलता न मिली। उनका अस्तित्त्व वैसा ही अंगारों में सुलगता रहा, हृदय में पीड़ा का महासागर वैसा ही उफनता रहा और आँखों से आँसू वैसे ही छलकते-बरसते रहे। अब तक रात घिर आयी थी। उनकी पत्नी एल्जा एवं बेटियाँ उन्हें खाने के लिए बुलाने आयी। इन सबने उन्हें समझाने की बहुतेरे कोशिश की, कि चलकर कुछ खा लीजिए। पिछले चार दिनों से कुछ खाया नहीं है। पर उन्होंने रूंधे हुए गले से केवल इतना ही कहा- मुझसे खाया न जा सकेगा।

रात में भी उन्हें नींद न आ सकी। वह लेटे हुए सोचते रहे कि कुछ साल पहले १९३९ ई. में उन्होंने ही अमेरिकी राष्ट्रपति रूज़वेल्ट का ध्यान परमाुण बम के निर्माण की ओर आकर्षित किया था। उन्होंने सोचा था कि इससे जर्मनी के तानाशाह हिटलर को डराया जा सकेगा, उसकी विनाशक-हिंसक गतिविधियों पर रोक लगेगी। पर ऐसा न हो सका। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने उन्हें धोखे में रखा, उनसे झूठे वायदे किए। और उन्हीं के द्वारा अन्वेषित ऊर्जा सिद्धान्त $E=mc^2$ का गलत इस्तेमाल करके परमाणु बम का विनाशक प्रयोग कर डाला। उनके इस काम ने विज्ञान, वैज्ञानिकता एवं वैज्ञानिकों को मानवता का हत्यारा बना दिया। वह देर तक यही सब सोचते रहे। उन्हें मुश्किल से थोड़ी देर के लिए नींद आयी। सुबह जब वह सूर्योदय से कुछ समय पहले सोकर उठे तो उनके अन्तर्मन में भी नया सूर्योदय हो रहा था। परमाणु विभीषिका ने उनके हृदय को परिवर्तित कर दिया था।

अगले दिन उन्होंने सरकार की विज्ञान नीति एवं सरकारी वैज्ञानिक संस्थाओं से स्वयं को अलग करने का निश्चय किया। इसी के साथ उन्होंने बच्चों, किशोरों एवं युवाओं के लिए एक शिक्षण संस्थान खोलने का निश्चय किया। एक ऐसा शिक्षण संस्थान जहाँ विज्ञान के साथ अध्यात्म भी अनिवार्य रूप से बताया-सिखाया जाय।

इसके उद्घाटन के अवसर पर उन्होंने महान् विचारक बर्ट्रेण्ड रसेल एवं अल्बर्ट श्वाइत्ज़र को आमंत्रित किया। इन दोनों विभूतियों के साथ दस अन्य महान् वैज्ञानिक भी पधारे। इन सभी वैज्ञानिकों में प्रायः सभी को किसी न किसी विषय पर प्रतिष्ठित नोबुल पुरस्कार मिल चुका था। सबने आज आइन्सटाइन को सर्वथा नए रूप में देखा, जो एक महान् वैज्ञानिक से कहीं अधिक महान् ऋषि लग रहे थे। उन्होंने इस शिक्षण संस्थान का उद्घाटन महात्मा गांधी के बड़े से चित्र पर माल्यार्पण करते हुए किया। ऐसा करते हुए वह भावुक हो उठे और रूंधे गले से कहा- मैं नमन करता हूँ इन महामानव को, जिन्होंने अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए विश्व में पहली बार अहिंसात्मक आन्दोलन का प्रवर्तन किया। वह ऐसा इसलिए कर सके क्योंकि वह सही मायने में सच्चे इन्सान और सच्चे अध्यात्मवेत्ता हैं।

आज के विज्ञान को भी अध्यात्म का सहचर्य चाहिए। विज्ञान एवं वैज्ञानिक शक्ति एवं साधन जुटाते हैं, उनका उपयोग सकारात्मक एवं सृजनात्मक हो, ऐसा तभी सम्भव है जब विज्ञान अध्यात्म की सृजन संवेदना से ओत-प्रोत हो। इसलिए यह आवश्यक है कि जिन्हें विज्ञान पढ़ाया जा रहा है, उन्हें अध्यात्म की भी व्यावहारिक समझ कराई जाय। विज्ञान एवं अध्यात्म के समन्वय के बिना विनाश लीलाएँ नहीं रोकी जा सकती। इस शिक्षण संस्थान की स्थापना के कुछ वर्षों बाद जब जापान का एक शिष्ट मण्डल उनसे मिलने आया तो वे फूट-फूट कर रो पड़े। और बड़ी व्यथा के साथ उन्होंने उनसे कहा- मैं आप लोगों का अपराधी हूँ, मुझे जो चाहें सजा दें। हालांकि मेरा यह अटल निश्चय है कि मैं अपने जीवन को प्रायश्चित्त में लगाऊँगा। जापान से आए हुए लोग उनकी इस विनम्रता को देखकर अपना दुःख भूल गए।

सन् १९५५ ई. में अपनी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उन्होंने बर्ट्रेण्ड रसेल एवं अल्बर्ट श्वाइत्ज़र के साथ रसेल-आइन्सटाइन मेनिफेस्टो पर हस्ताक्षर किए। इस मेनिफेस्टो में ग्यारह अन्य नाभिकीय वैज्ञानिकों ने भी हस्ताक्षर किए थे। इस मेनिफेस्टो का मकसद यही था कि विश्व को परमाणु-महाविनाश से सजग किया जा सके, बचाया जा सके। विश्व के लोग परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग के बारे में जान सकें, सीख सकें। वह महात्मा गांधी को अपना आदर्श मानते थे। उन्होंने अमेरिका में तत्कालीन भारतीय राजदूत गगन बिहारी मेहता से कहा था- मेरी तुलना उस महान् व्यक्ति से न करो, जिन्होंने मानव जाति के लिए बहुत कुछ किया है। उन्हें भारत देश से बहुत आशाएँ थी। यदा-कदा वह कहते थे कि भारत की धरती ही सम्भवतः विज्ञान व अध्यात्म के समन्वय को भविष्य में सिद्ध कर सके। उनकी इसी सोच से प्रेरित होकर महान् वैज्ञानिक वारनर हाइज़ेनवर्ग भारत आए थे।

22

वेदान्त से दिशा मिली आधुनिक भौतिकी को

अध्यात्मवेत्ता वैज्ञानिक वारनर हाइज़ेनवर्ग शान्ति निकेतन आकर उल्लसित-उत्साहित थे। उन्होंने जर्मनी में रहते हुए भारत के बारे में काफी कुछ पढ़ा-सुना था। वेदमन्त्रों, वैदिक ऋषियों एवं ऋषि आश्रमों के बारे में उनने अनेकों कथा-गाथाएँ सुनी थी। जर्मनी के महाकवि गेटे उन्हें सर्वाधिक प्रिय थे। इनकी महाकवि कालिदास की काव्य रचना अभिज्ञान शाकुंतलम् का जर्मन काव्यानुवाद उनने कई बार पढ़ा था। इसकी अनेकों पंक्तियाँ उन्हें कण्ठस्थ थी। ऋषिकण्व, उनका आश्रम, आश्रम के नैसर्गिक सौन्दर्य का काव्य चित्रण उनको सदा ही रोमांचित-पुलकित करता था। आज शान्ति निकेतन आकर वह अपने पढ़े हुए सब कुछ को साकार-साक्षात् अनुभव कर रहे थे। शान्ति निकेतन की हरीतिमा, हरे-भरे सजीले युवाओं की तरह खड़े वृक्ष, उनसे स्नेहालिंगन करती लताएँ। चहुँ ओर विविध रंगों की छटा एवं सम्मोहक सुरभि बिखेरते वीरूध। यह सब कुछ ऐसा था, जैसे कि ममतामयी प्रकृति ने मानव जीवन पर दुलार करके अपने आंचल का एक कोना उसके लिए बिछा दिया हो।

शान्ति निकेतन पहली नजर में हाइज़ेनवर्ग को बहुत भाया, बहुत ही भाया। यहाँ सब ओर देखकर, सब तरफ घूम कर उन्हें ऐसा लगा कि यह सम्पूर्ण आश्रम विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की ऐसी सुन्दर कविता है- जिसमें वेदयुग, वेदमन्त्र, वैदिक ऋषि एवं ऋषि आश्रम सब एक साथ साकार हो उठे हैं। उन्होंने विश्वकवि के विचारों-भावों की कोख से निकलकर शब्द रूप नहीं वस्तु रूप धारण कर लिया है। और सम्पूर्ण मानवता के लिए अपने हृदय में स्नेह व प्रेम की अनन्त अनन्त धाराएँ समेटे हुए विश्वकवि उन्हें महाकवि गेटे, महाकवि कालिदास, ऋषिकण्व इन सबका समवेत स्वरूप लगे। उन्हें देखना, उनसे बातें करना, उनके पास बैठना युवा हाइज़ेनवर्ग के लिए कल्पना लोक के साकार होने जैसा था। पिछले नौ सालों से जब से उन्होंने अपने साथी वैज्ञानिकों के साथ परमाणु भौतिकी पर अनुसन्धान करना शुरू किया था, लगभंग तभी से या उसके कुछ दिन बाद से ही वह रवीन्द्रनाथ टैगोर को पत्र लिख रहे थे।

सन् १९२० ई. में हाइज़ेनवर्ग ने डेनमार्क के नीलबोर, फ्रांस के लुइस द बोगली, आस्ट्रिया के इरविन श्रोडिंगर एवं वोल्फगैंग पाउली एवं इंग्लैण्ड के पॉल डिरेक के साथ पदार्थ के कण की प्रकृति पर शोध कार्य करना शुरू किया था। पदार्थ का सबसे छोटा कण अणु या परमाणु है यह मिथक तो कब का टूट चुका था। अब तो इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन, न्यूट्रॉन से भी बात आगे निकल चुकी थी। वाईज़ॉन, मीसॉन, टेक्यॉन और भी इन छोटे-छोटे कणों के बीस साथी-सहचर खोजे जाने के बावजूद अभी तक यह अनिश्चित ही था कि पदार्थ का सबसे छोटा कण आखिर क्या है या फिर है भी अथवा नहीं। ये सभी वैज्ञानिक अपनी राष्ट्रीय एवं राष्ट्र की राजनयिक-राजनैतिक क्षुद्र सीमाओं को दरकिनार कर ज्ञान की अनन्तता में एक दूसरे से निरन्तर सम्पर्क में रहते थे।

अपने अनुसन्धान कार्य को करते हुए एक अवसर पर इन सबको लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि पदार्थ अपने मूल रूप में कुछ है ही नहीं। क्योंकि कणों के

कम्पन का अध्ययन करते हुए इन्हें पता चला कि कणों की वास्तविकता तो ऊर्जा की तरंग है। इस असलियत को जानकर ये सब कण की बातें छोड़कर तरंग यांत्रिकी या वेव्स मैकेनिक्स का अध्ययन करने लगे थे। अध्ययन के इस मोड़ पर हाइज़ेनवर्ग को भारत एवं भारतीय ऋषियों का दर्शन बहुत याद आया। वैसे इस कार्य को करते हुए उन्हें लगातार नौ वर्ष हो चुके थे। महाकवि टैगोर से उनका पत्र सम्पर्क था ही। सो उन्होंने सन् १९२९ ई. में भारत आने की ठान ली। और आज हल्की-हल्की सर्दियों के मौसम में वह शान्ति निकेतन में थे। यहाँ आकर रवीन्द्र बाबू को उन्होंने अपने और अपने साथी सदस्यों के अनुसन्धान कार्य के बारे में विस्तार से बताया। फिर तनिक निराशाजनक स्वर में बोले- पदार्थ के सबसे छोटे कण की खोज करते-करते अब तो ऐसा अनुभव होता है कि पदार्थ की कल्पना ही झूठ है।

पदार्थ के सभी नाम-रूप मिथ्या हैं। तब फ़िर सच क्या है? उत्तर में विश्वकवि ने अद्वैत वेदान्त के महान् आचार्य आदिगुरु शंकराचार्य के ग्रन्थ विवेकचूड़ामणि का एक श्लोक मधुर स्वर में उच्चारित किया- **यदिदं सकलं विश्वम् नानारूपम् प्रतीतयज्ञानात्। तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेषभावनादोषम्।** यह सम्पूर्ण विश्व जो अज्ञान से नाना रूप व नाम वाला प्रतीत होता है। दरअसल वह समस्त भावनाओं के दोषों से रहित ब्रह्म ही है। इसी के साथ विश्वकवि ने उन्हें वेदान्त दर्शन के मूल मर्म को उसके सार को समझाया- पदार्थ और उसके समस्त स्वरूप मिथ्या हैं। यहाँ तक कि ऊर्जा जो कि पदार्थ का सूक्ष्म स्वरूप है इसके भेद भी असत्य है। सच तो यह है कि सारे भेद वे पदार्थ के हों या प्रकृति के विविध रूपों के सारे के सारे मायिक छलना है। जो सत्य है वह अभेद है, वह ब्रह्म है। वही निश्चित है, बाकी सब अनिश्चित।

वेदान्त का यह विचार, आचार्य शंकर का यह अनुभव हाइज़ेनवर्ग को गहरे में समझ में आया। वह कई दिनों तक रवीन्द्रबाबू से वेदान्त के अद्वैत सत्य पर

विचार विमर्श करते रहे। इसी बीच विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस युग में वेदान्त के नव्य रूप को स्थापित करने वाले स्वामी विवेकानन्द के बारे में बताया। उन्हें वे सभी स्थान स्वयं चलकर दिखाए जो उनसे सम्बन्धित थे। दक्षिणेश्वर का वह कक्ष जहाँ वह अपने गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस देव का उपदेश सुनते थे। फिर वह उन्हें ले गए श्रीरामकृष्ण संघ के मुख्य केन्द्र बेलूड़ मठ, जिसकी स्थापना उन्होंने अद्वैत वेदान्त के युगतीर्थ के रूप में की थी। यहाँ पर उन्होंने विवेकानन्द की एक उक्ति को उदधृत करते हुए कहा- भेद सभी मिथ्या है, वे सामाजिक हो या जैविक अथवा प्राकृतिक। अभेद ही सत्य है और वह ब्रह्म है।

यह ब्रह्म क्या है? युवा हाइज़ेनवर्ग ने गहरी जिज्ञासा के साथ पूछा। उत्तर में विश्वकवि ने बेलूड़ मठ में ही गंगा के किनारे खड़े होकर गंगा के नानारूप और आकार वाले जलकणों व जलउर्मियों के समस्त काल्पनिक भेदों को समाप्त करने वाली विशाल जलराशि को दिखाते हुए उनसे कहा- **निरस्तमायाकृतसर्वभेदं, नित्यं सुखं निष्कलमप्रमेयम्। अरूपमव्यक्तमनाख्यमव्ययं, ज्योतिः स्वयं किञ्चितदिदं चकास्ति।** "वह समस्त काल्पनिक भेदों से रहित है। नित्य, सुख स्वरूप, कलारहित और प्रमाणादि का अविषय है। वह कोई अरूप, अव्यक्त, अनाम और अक्षय तेज है, जो स्वयं ही प्रकाशित हो रहा है।" आचार्य शंकर के इस अनुभव श्लोक को विश्वकवि की मधुरवाणी से सुनकर हाइज़ेनवर्ग को अपने अनुसन्धान की नयी दिशा मिली। उन्होंने भारत से वापस लौटकर यहाँ के अद्वैत वेदान्त से प्रभावित होकर अनिश्चितता के सिद्धान्त (Principle of uncertainty) का प्रतिपादन किया। बाद के अनेकों वर्ष बीत जाने पर जब ११ अप्रैल १९७२ को जर्मनी के म्यूनिख शहर में प्रसिद्ध भौतिकविद् फ्रिटजॉफ काप्रा उनसे मिलने आये, तो हाइज़ेनवर्ग ने उन्हें अपने कई संस्मरण सुनाए। और उनसे कहा कि भारत देश द्वारा प्रवर्तित अध्यात्म का वैज्ञानिक अध्ययन आज के युग की आवश्यकता है।

उनकी यह प्रेरणा ही भौतिक शास्त्र के वैज्ञानिक फ्रिटजॉफ काप्रा की कालजयी रचना "**द ताओ ऑफ फिजिक्स**" की रचना का आधार बनी। इसी के सिलसिले में काप्रा दिसम्बर १९७४ में हाइज़नेवर्ग से दुबारा मिले। और अपनी इस पुस्तक की पाण्डुलिपी उन्हें दिखाई। इसे देखकर वह बेहद हर्षित हुए और बोले अध्यात्म के वैज्ञानिक अध्ययन एवं प्रतिपादन का कार्य आखिर शुरू हो ही गया। इसके पश्चात् नवम्बर १९७५ में फ्रिटजॉफ काप्रा ने उन्हें प्रकाशित हो चुकी **द ताओ ऑफ फिजिक्स** की पहली प्रति भेजी। इसे उन्होंने पढ़ा अवश्य, पर इस पर वह अपनी टिप्पणी न लिख सकें, क्योंकि इसके पहले ही उनका देहावसान हो गया। मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व उन्होंने अपने मित्र से कहा था- विश्व के वैज्ञानिकों को भारत के अध्यात्मवेत्ताओं को विशेषतः स्वामी विवेकानन्द को पढ़ना चाहिए। वह भारत के ऐसे वैज्ञानिक ऋषि हैं, जिनके विचार आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान का आधार बन सकते हैं।

23

उच्चस्तरीय आध्यात्मिक अनुभवों के प्रयोगदृष्टा : विवेकानन्द

वैज्ञानिक ऋषि स्वामी विवेकानन्द ध्यानलीन थे। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था कि वह किसी महान् अन्तर्प्रयोग में पूरी तरह विलीन हो गए हों। ब्रह्मबेला के धुंधलके से ही वह इस कक्ष में थे और अब तो सांझ का धुंधलका भी घिरने लगा था। इस बीच सूर्यदेव भी अपने कितने ही सौम्य व उग्र रूप दिखा कर विदा ले चुके थे। मेरी हेल अपने इस संन्यासी भाई को देखने कितनी ही बार इस कक्ष में आ चुकी थीं। हर बार उन्होंने यही देखा कि उनकी आँखें मुंदी हुई हैं, देह एकदम शान्त, स्थिर एवं निःस्पन्द है। मेरी हेल की हिम्मत ही नहीं हुई कि वह उस कक्ष में कुछ बोले अथवा उन्हें ध्यान से उठाने की कोशिश करे। बस वह इस कक्ष में चुपके से आती और पुनः चुपचाप वापस लौट जातीं। ऐसा कई बार हो चुका था। इस बार जब वह वापस हुई तो बाहर हैरियट हेल खड़ी थी। उन्होंने मुस्कराते हुए मेरी से पूछा- क्यों अपने भ्राता अभी तक ध्यान में लीन हैं। हाँ- तनिक खीझ ओर निराशा के साथ मेरी ने कहा- सम्भवतः वह भूल चुके हैं कि इस समय वह भारत देश में हिमालय की किसी गुफा में नहीं बल्कि अमेरिका के न्यूयार्क शहर के इस भवन के एक कमरे में हैं।

और शायद यह भी कि अभी थोड़ी ही देर बाद श्रीमती सारा ओलीबुल- उनकी प्रिय धीरामाता प्रो. विलियम जेम्स को लेकर यहाँ आने वाली हैं। साथ में यह भी कहो मेरी कि हम बहनें भी इतनी दूर से चलकर यहाँ केवल अपने इन संन्यासी भ्राता का सान्निध्य पाने के लिए आयी हुई हैं। हैरियट ने मेरी के कथन के साथ अपनी बात जोड़ी। थोड़ी देर तक वे दोनों एक दूसरे को देखती हुई चुप रहीं। फिर वे दोनों एक साथ ही उस कमरे में घुसीं जहाँ स्वामी विवेकानन्द ध्यान कर रहे थे। अब तक उस कक्ष में सांझ का धुंधलका गहरा हो चुका था। परन्तु आश्चर्य! उस धुंधलके में हल्का मद्धम सा श्वेत प्रकाश फैल रहा था। जब उन्होंने ध्यान से देखा तो यह अनुभव हुआ कि मद्धम प्रकाश उनके संन्यासी भ्राता के शरीर से निकल रहा था। अभी भी उनके नेत्र मुंदे हुए थे, परन्तु मुख पर इस स्वर्गीय प्रकाश की स्पष्ट दीप्ति थी। यह देखकर वे दोनों आश्चर्य जड़ित रह गयी। कुछ भी न बोल सकीं बस शान्त कदमों से वापस लौट आयीं।

इसके तकरीबन एक घण्टे बाद श्रीमती सारा ओलीबुल प्रो. विलियम जेम्स के साथ वहाँ आ पहुँची। उनके साथ ब्रुकलिन की मिस एस.ई. वाल्डो एवं प्रो. जान राइट भी थे। ये सभी स्वामी विवेकानन्द से पूर्व परिचित थे। प्रो. जेम्स की स्वामी विवेकानन्द से पहली मुलाकात श्रीमती ओलीबुल ने ही करायी थी। उस समय स्वामी जी का हार्वर्ड विश्वविद्यालय में व्याख्यान हो रहा था। उस व्याख्यान का विषय था- 'द फिलॉसफी ऑफ वेदान्त'। इस व्याख्यान ने और व्याख्यान से भी बढ़कर स्वामी जी के व्यक्तित्व ने उन्हें बेहद प्रभावित किया। स्वामी जी के व्याख्यानों में एक बात जो उन्हें ही नहीं सभी को अनुभव हुई कि ये महान् संन्यासी जब व्याख्यान देते थे तो उनकी देह से हल्के नीले रंग की विद्युत् लहरें निकलती थीं और उन्हें सुनने वालों को कभी हल्के कभी तीव्र झटके अनुभव होते थे। जेम्स सुविख्यात चिकित्सा वैज्ञानिक थे और अब मनोविज्ञान पर गहन अनुसन्धान कर रहे थे। उनका वैज्ञानिक मन स्वामी जी के आध्यात्मिक रहस्यों को जानने के लिए जिज्ञासु था।

इस जिज्ञासु जेम्स एवं उनके साथ आए सभी को ड्राइंग रूप में बिठाने के साथ हेल बहनों ने श्रीमती ओलीबुल के कान में कुछ कहा, जिसे सुनकर वह मुस्कराने लगीं। इतने में अन्दर वाले कक्ष से बाहर आते हुए स्वामी विवेकानन्द ने इस कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा- आपका स्वागत है मिस्टर विलियम। इसी के साथ उन्होंने अन्य सभी के हाल पूछे। साथ ही उन्होंने कहा- धीरामाता क्यों न हम सब भोजन के लिए डाइनिंग रूम चलें। मेरी बहनों ने तो आज मुझे खाना ही नहीं खिलाया। सम्भवतः आप सबको ये लोग भोजन कराएँ और आपके साथ मैं भी भोजन कर लूँ। उनकी इस बात को सुनकर सब हँसने लगे। मेरी हेल एवं हेरियट हेल थोड़ा गुस्सा हुई, फिर वे भी हँसने लगी। थोड़ी देर बाद वे सभी डाइनिंग रूप में भोजन की टेबल पर इकट्ठे थे। इन सबमें अन्य सभी तो शान्त थे, परन्तु विलियम जेम्स के मुख पर उनकी जिज्ञासा की त्वरा स्पष्ट थी।

इसलिए उनकी ओर देखते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा- योग एवं अध्यात्म की प्रारम्भिक क्रियाएँ व्यावहारिक एवं शारीरिक होती हैं। शरीर पर इनके प्रभाव सकारात्मक होते हैं। हठयोग की प्रक्रियाएँ एवं राजयोग की आसन-प्राणायाम क्रियाएँ इसलिए हैं। विलियम जेम्स स्वामी जी के राजयोग को पढ़ चुके थे। इन प्रवचनों का संकलन करने वाली मिस एस.ई.वाल्डो से वार्तालाप के आधार पर भी उन्होंने बहुत कुछ जाना था। इन स्मृतियों को याद करते हुए उन्होंने हामी में सिर हिलाया। स्वामी जी ने उनसे कहा- इन प्रारम्भिक योग क्रियाओं के शरीर क्रिया वैज्ञानिक प्रभाव की वैज्ञानिक परख सम्भव है। लेकिन इसके बाद जब योग साधक अध्यात्म की उच्चस्तरीय कक्षा में प्रवेश करता है, तब स्थिति बदल जाती है। समाधि की उन्नत अवस्था में जब व्यक्ति एवं विराट् अथवा यूं कहें कि योग साधक की व्यक्तिगत चेतना ब्रह्माण्डीय चेतना से, ईश्वरीय चेतना से मिलती है तो सब कुछ वैसा नहीं रह जाता।

ऐसी स्थिति में प्रचण्ड आध्यात्मिक ऊर्जा प्रवाह मन एवं देह में अवतरित होते हैं। इनका अध्ययन करने में शरीर क्रियाविज्ञान समर्थ नहीं है। इसके अध्ययन के लिए मनोविज्ञान एवं परामनोविज्ञान की वैज्ञानिक अध्ययन विधियाँ चाहिए। इन विधियों के प्रयोग के बावजूद भी इसका आंशिक अध्ययन ही सम्भव है। स्वामी विवेकानन्द की इन बातों को प्रो. जेम्स ध्यान से सुन रहे थे। अभी तक उन्होंने भोजन करना प्रारम्भ नहीं किया था। इसे देखकर स्वामी जी ने उनसे आग्रहपूर्वक कहा- बातें करते हुए भोजन करना भी प्रारम्भ करें। अवश्य ऐसा कहते हुए उन्होंने खाना शुरू किया। उन्हें खाते हुए देख स्वामी जी ने मुस्कराते हुए कहा- चेतना की उच्चस्तरीय कक्षाओं से अवतरित होने वाली आध्यात्मिक ऊर्जा मानसिक क्रियाओं एवं भावनात्मक स्थिति में व्यापक परिवर्तन करते हुए उसमें अतीन्द्रिय बोध के द्वार खोलती है। तब व्यक्ति- व्यक्ति नहीं रह जाता, वह बन जाता है- विराट् का अभिन्न हिस्सा। तभी उसके अनुभवों में भविष्य दर्शन, दूर बोध-अन्तर्बोध के नए द्वार खुलते हैं।

इसके बाद के आध्यात्मिक अनुभव इतने उच्चस्तरीय होते हैं कि उनके वैज्ञानिक अध्ययन का प्रयास दर्शन बन जाता है। यह ठीक उसी तरह से है जैसे कि भौतिक विज्ञान की प्रारम्भिक प्रायोगिक क्रियाएँ प्रयोगशालाओं में कैद रहती हैं। लेकिन बाद में उनके उच्चतम रूप गणितीय मॉडल बन जाते हैं। यही बात अध्यात्म के उच्चतम अनुभवों के बारे में है। इस अवस्था में सृष्टिज्ञान एवं आत्मज्ञान इतने रहस्यात्मक ढंग से मिलते हैं कि इन्हें वैज्ञानिक रीति से समझने का प्रयास दर्शन बन जाता है। ऐसा दर्शन जो काल्पनिक विचारों की उथली भूमि पर नहीं बल्कि अनुभवों की गहराई में अंकुरित होता है। वेदान्त ऐसा ही दर्शन है। स्वामी जी जब बोल रहे थे तब हेल बहनों को उनकी ध्यानलीन अवस्था याद आ रही थी। अब उन्हें जैसे अनुभव होने लगा कि उस अवस्था में अवश्य स्वामी जी की आत्मचेतना सृष्टि चेतना के साथ एकाकार हो रही होगी।

सन् १८९६ ई. की शुरूआत में ठण्ड के दिनों में स्वामी विवेकानन्द से हुई इस भेंट-वार्तालाप ने विलियम जेम्स की विचार प्रक्रिया को गहराई से प्रेरित, प्रभावित एवं परिवर्तित किया। इसी के बाद उन्होंने अपनी विख्यात् रचना 'द वैराइटीज़ ऑफ रिलीजियस एक्सपीरियेन्सेज़' शब्दों में पिरोयी। इसमें उन्होंने स्वामी जी को उद्धृत भी किया। इसी घटना के बाद शरीर क्रिया वैज्ञानिक से मनोवैज्ञानिक हुए प्रो. विलियम जेम्स दार्शनिक हो गए। और उस दिन किए गए अपने ध्यान के महान् प्रयोग के परिणाम का संकेत करते हुए बाद के वर्ष में स्वामी जी ने अपने अल्मोड़ा से लिखे गए पत्र में ९ जुलाई १८९७ ई. को लिखा- कम से कम भारत में मानव जाति के कल्याण का ऐसा यन्त्र स्थापित कर दिया है, जिसका कोई शक्ति नाश नहीं कर सकती। आगे के दिनों में उन्होंने अपने वाराणसी प्रवास के समय कहा- मैंने इतना कुछ कर दिया है, जो डेढ़ हजार साल तक बना रहेगा। उनके इन्हीं उच्चस्तरीय आध्यात्मिक प्रयोगों के क्रम को महर्षि अरविन्द ने जारी रखा।

24

देवमानव बनने का एक ही उपाय : रूपान्तरण

आध्यात्मिक जीवन में अनगिन सफल वैज्ञानिक प्रयोग करने वाले महर्षि अरविन्द पाण्डिचेरी आश्रम के अपने हॉलनुमा कक्ष में सोफे पर एकाकी बैठे थे। उनकी आँखें मुंदी हुई थी, सिर सोफे से टिका हुआ था। पाँव तनिक आगे की ओर आरामदायक स्थिति में थे। स्वर्णिम आभा लिए उनके सिर और दाढ़ी के श्वेत केश यदा-कदा हवा में हल्के से लहरा उठते थे। उनके मुख पर हल्के स्निग्ध श्वेत-स्वर्णिम प्रकाश की प्रशान्त दीप्ति थी। सम्भवत: यह चेतना के किसी उच्चतर प्रकाश लोक से उन पर बरस रही थी। वह देर तक इसी अवस्था में बैठे रहे। फिर उन्होंने धीरे से आँखें खोली। द्वार पर चम्पकलाल थे, जो शायद इसी प्रतीक्षा में थे कि वह कब नेत्र खोलें और वह अन्दर आएँ। चम्पकलाल के अन्दर आने पर वह हौले से मुस्करा दिए। उनकी यह मुस्कान जैसे दैवी प्रेम, अनन्त करूणा एवं अपरिमित आशीष का अजस्त्र निर्झर थी।

चम्पकलाल को अनायास ही इसमें स्नान का अवसर मिला। सांझ ढलने लगी थी। इस कक्ष में और कक्ष से बाहर इसका अहसास होने लगा था। सूर्यदेव पूर्व की ओर से प्रकाश बटोर कर उसे पश्चिम में बिखेरने के लिए निकल चुके थे। इस सांझ की प्रतीक्षा अनेकों को अनेक तरह से रहती थी। खास तौर पर नीरदबरन, चम्पकलाल, सत्येन्द्र ठाकुर, मूलशंकर, ए.बी. पुराणी और बेचरलाल को। क्योंकि ये सब सांझ के ध्यान में नियमित रूप से श्री अरविन्द के सान्निध्य से लाभान्वित होते थे। ध्यान तो खैर थोड़ी देर का होता था, पर इसके उपरान्त जो चर्चाएँ होती थीं, वे अतीव सुखकारी थी। इन सांध्यवार्ताओं का क्रम लगभग १९२३ ई. से ही था, जो अब तक १९५० ई. के इस अक्टूबर मास के प्रारम्भ तक भी अनवरत चल रहा था। बस बदले थे तो केवल पात्र, बाकी सब कुछ लगभग यथावत था। इन वार्ताओं में श्री अरविन्द के शब्द झरोखों से चेतना के उन्नत व उच्चतर आयामों का प्रकाश प्रकट होता था।

अक्टूबर महीने में अभी तक पाण्डिचेरी में सर्दी जैसा कुछ नहीं था। सांध्यवार्ताओं में शामिल होने वाले प्रायः सभी एक-एक करके आ चुके थे। सबसे अन्त में नीरदबरन आए। उनके आते ही सब लोग श्री अरविन्द के चरणों के पास बैठ गए। कुछ देर बात माताजी आयी। कुछ दिनों से वह सांझ के ध्यान और वार्ताओं में कम ही आती थी। इधर प्रायः थोड़ी गम्भीर भी रहने लगी थी। पर आज वह अनायास ही आ गयी थीं। उनके आने के बाद ध्यान का क्रम शुरू हुआ। गहरी नीरवता एवं शान्त निःशब्दता के साथ श्री अरविन्द के अलौकिक आध्यात्मिक प्रकाश ने सभी को अन्दर से आपूरित एवं बाहर से आवृत्त कर लिया। देर तक यह स्थिति बनी रही। फिर मौन के कपाट खुले, नीरवता में शब्दों का संचार हुआ। प्रारम्भ स्वयं महर्षि अरविन्द ने किया। उन्होंने कहा कि- मैंने निश्चय किया है कि मैं सावित्री का कार्य अब शीघ्र ही समाप्त कर दूँ। उनका यह कथन सुनकर माताजी की चेतना में कुछ तीव्रता से स्पन्दित हुआ, जिसे उन्होंने बाहर प्रकट नहीं होने दिया।

महर्षि अरविन्द बड़ौदा के निवास काल से ही अध्यात्म के वैज्ञानिक प्रयोगों एवं इनके परिणामों को काव्य रूप देने लगे थे। इन्हीं दिनों सावित्री का नवांकुर फूटा था। जो बाद में अपनी रूपाकृति पाता गया। इस सम्बन्ध में किसी ने उनसे पूछा था- आखिर इन आध्यात्मिक प्रयोगों एवं इनके परिणामों को काव्य में कहने की क्या आवश्यकता है? उत्तर में उन्होंने कहा था कि काव्य में मन्त्र एवं सूत्र को एक साथ कहने की सुविधा है। काव्य में अनुभूत सत्य के अनगिन आयामों को एक साथ कहा जा सकता है। इसीलिए सम्भवतः वेद के ऋषियों ने भी अपने प्रयोगों एवं परिणामों को इसी रीति से कहा। वेदमन्त्र छन्द में कहे गए, गाए गए। बात सही भी थी। बड़ौदा के निवास से अब तक तकरीबन ५० वर्षों का सुदीर्घ समय उन्होंने अध्यात्म विज्ञान के प्रयोगों में गुजारा था। उन सभी प्रयोगों के शोध निष्कर्ष सावित्री में कहे जा रहे थे। अनुभूतियों एवं निष्कर्षों के हिसाब से इसे कई बार संशोधित, परिवर्तित एवं परिवर्धित भी किया गया था।

इसी सावित्री को अन्तिम रूप देने के लिए वह चिन्तित थे। इसके बारे में उन्होंने कहा था- इसका प्रत्येक शब्द मेरे अध्यात्म विज्ञान के वैज्ञानिक प्रयोगों की परिणति है। आज जब उन्होंने इस कार्य को सम्पूर्णता देने की बात कही तो वहाँ बैठे हुए सभी जनों के मन में अनेकों बिम्ब उभरे। वहाँ बैठे अम्बालाल पुराणी को १९१८ में कहा गया उनका वह वाक्य स्मरण हो आया- भारत की स्वाधीनता निश्चित हो चुकी है। तुम यहाँ आ जाओ। हतप्रभ पुराणी ने तब उनसे कई प्रश्न किए थे। और तब उन्होंने उनकी ओर देखते हुए सामने की मेज पर हल्का सा घूँसा मारते हुए कहा था- विश्वास करो यह उतना ही निश्चित है जितना कल का सूर्योदय। तब पुराणी जी को समझ में आया कि भारत देश को यह स्वाधीनता श्री अरविन्द के आध्यात्मिक प्रयोगों के परिणाम के रूप में मिलने वाली है। सन् १९४७ को उनके जन्मदिवस १५ अगस्त की तिथि ने इसे सत्य प्रमाणित कर दिया।

२० अगस्त १९४० को उन्होंने हिटलर के आसुरी शक्ति का माध्यम होने की बातें कही थी। साथ ही यह भी कहा था कि अध्यात्म विज्ञान के उच्चस्तरीय प्रयोगों के द्वारा हिटलर पराजित होगा। अन्ततः यही हुआ। सन् ४५ की ३० अप्रैल को हिटलर ने आत्महत्या कर ली और १५ अगस्त को जापान ने हथियार डाल दिए। उन्होंने अपने प्रयोगों के परिणाम स्वरूप यह भी कहा- भारत का भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है। इसकी आध्यात्मिक शक्ति विश्व नेतृत्व करेगी। ऐसे अनगिन तथ्यों को यहाँ बैठे सभी जानते थे। फिर भी एक बात थी जो मूलशंकर के मन में आयी और उन्होंने उसे पूछ लिया- सामान्य जीवन में मनुष्य के कष्टों-विषादों का कारण क्या है? "भगवान् से विमुखता" उन्होंने उत्तर दिया। फिर वह बोले- हम स्वयं में गहरे तक धंसे हुए विकारों, विक्षोभों, अंधेरों को पहले दमित करने का, उन्हें दबाये रखने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन जब उन्हें दबाए रखने की घुटन बर्दाश्त से बाहर हो जाती है तो फिर बाहर निकाल फेंकते हैं।

दोनों ही अवस्थाओं में हम होते नरपशु ही हैं, जो यदा-कदा नरकीटक एवं नरपिशाच का रूप ले लेता है। इसका समाधान है रूपान्तरण। स्वयं की विकृतियों-विक्षोभों के अतल अंधेरों में उतरकर भगवान् के प्रकाश का आवाहन करना, उसे आमंत्रित करना। यह कार्य किसी एकान्त गुफा में नहीं करना होता, बल्कि रोज के सभी कामों में, सभी अवस्थाओं में उन्हें निरन्तर पुकारना होता है। न घबराना, न पलायन करना है, और न ही पशुता व पैशाचिकता से समझौता करना है। करना है इसका रूपान्तरण। यही मनुष्य का अन्तिम समाधान है। इसी के साथ उनके मुख से स्वरचित कविता की कुछ पंक्तियाँ उच्चारित हुईं-

खोद रहा मैं त्रासभरे इस कीच बीच में
लम्बी गहरी एक डगर
उतरे जिससे स्वर्ण नदी का गीत मनोहर
मृत्युहीन ज्वाला का घर।

इसके पश्चात् उन्होंने कहा- कि किसी व्यक्ति के आध्यात्मिक होने की कसौटी यह है कि वह अपने सामान्य व्यक्तिगत जीवन में, सामान्य कार्यों में अध्यात्म के वैज्ञानिक प्रयोग कितनी तत्परता व तल्लीनता से कर रहा है।

⌘

25

कैसा होगा मनुष्य जब उसके जीवन में उतरे वैज्ञानिक अध्यात्म

व्यक्तिगत जीवन में वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रयोग जीवन को सार्थक, सफल एवं सम्पूर्ण बनाते हैं। यह कहते हुए डॉ. राजा रमन्ना कहीं खो से गए। सम्भवत: वह अपनी यादों को अतीत के धुंधलके से निकालकर वर्तमान के उजियारे में लाने की कोशिश कर रहे थे। इस कोशिश में उनके सांवले चेहरे पर स्वाभिमान, प्रतिभा एवं संवेदना की सम्मोहकता और भी गाढ़ी हो गयी। अनगिन युवा उन्हें टकटकी बांधे देख रहे थे, और पूरे ध्यान से उनको सुन रहे थे। यह अवसर युवा यूथ कन्वेन्शन का था, जिसे श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन ने अपने मुख्यालय बेलुड़ मठ में आयोजित किया था। सन् १९८५ ई. के दिसम्बर महीने में हो रहे इस आयोजन में देश भर के अलग-अलग हिस्सों से अनगिनत युवा प्रतिभागी यहाँ आए हुए थे। इन सभी के अन्तर्भावों को युवा चेतना के शाश्वत् प्रेरक स्वामी विवेकानन्द के महान् व्यक्तित्व ने अपने आकर्षण में बांध रखा था।

इन दिनों पूरे मठ में उत्सव का माहौल था। हर दिन कुछ नया लेकर आता था। हर रात नए जागरण के लिए प्रेरित करती थी। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय दुर्लभ विभूतियों का संग-साथ, सान्निध्य-सुपास भला अन्यत्र कहाँ कब सुलभ होता। आज के दिन मंच पर डॉ. रमन्ना आसीन थे। उनके एक ओर 'द वन्डर दैट वाज़ इण्डिया' के विश्व विख्यात् लेखक प्रो. ए.एल. बाशम बैठे हुए थे। दूसरी ओर प्रखर अध्यात्मवेत्ता, ''युगनायक स्वामी विवेकानन्द'' तथा दर्जनों मौलिक व अनूदित पुस्तकों के सुविख्यात् लेखक, चिन्तक स्वामी गम्भीरानन्द महाराज बैठे हुए थे। स्वामी भूतेशानन्द, स्वामी लोकेश्वरानन्द, स्वामी स्मरणानन्द जैसे अन्य वरिष्ठ संन्यासी भी मंच पर आसीन थे। इन सभी की एक साथ मंच पर उपस्थिति युवाओं के चिन्तन एवं चेतना को उत्प्रेरित, उद्दीपित एवं उत्साहित कर रही थी।

अभी थोड़ी देर पहले उन्होंने प्रो. ए.एल. बाशम को सुना था और अब डॉ. राजा रमन्ना बोल रहे थे, जो इन दिनों भारत के परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष होने के साथ भारत सरकार के वैज्ञानिक सलाहकार भी थे। सन् १९७४ ई. में पोखरण में हुए पहले परमाणु विस्फोट के कर्त्ताधर्ता एवं 'आप्रेशन स्माइलिंग बुद्ध' के सूत्र संचालक यही थे। ये परमाणु भौतिकी, रिएक्टर भौतिकी व डिज़ाइन में विशेषज्ञता के साथ संगीत, दर्शन विशेषतया वेदान्त दर्शन के मर्मज्ञ मनीषी थे। वैज्ञानिक अनुसन्धान के साथ नियमित साधना इनका स्वभाव था। युवाओं को सम्बोधित करते हुए वह कह रहे थे- मुझे अध्यात्म का पहला पाठ मेरी विधवा चाची राजम्मा ने पढ़ाया। उन्होंने मुझे बताया कि आध्यात्मिक जीवन के लिए कर्मकाण्ड उतने महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना कि महत्त्वपूर्ण संवेदना का परिष्कार है। जिनकी संवेदना परिष्कृत होती है, वे सुख भोगने में नहीं औरों को सुख पहुँचाने में विश्वास करते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने दु:खों का रोना नहीं रोते, बल्कि दूसरों के दु:खों को दूर करने का महापराक्रम करते हैं। मेरी इन्हीं चाची ने रामायण, महाभारत व अन्य पुराणों की कथाओं के साथ भगवान् श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ सुनायी।

अपने न्यायाधीश पिता बी. रमन्ना एवं साहित्य में गहरी अभिरुचि रखने वाली मां रूक्मिनी अम्मा की प्रेरणा से मैं विज्ञान का विद्यार्थी बना। विज्ञान ने मुझे पूर्वाग्रहों से मुक्त किया। विज्ञान ने मुझे सिखाया श्रेष्ठता वही है जो औचित्य एवं उद्देश्यों की प्रायोगिक कसौटी पर खरी साबित हो। इसी तरह सत्य पर किसी मत, किसी पथ अथवा किसी जाति या देश का एकाधिकार नहीं। यह सार्वभौमिक एवं सार्वदेशिक है। अध्यात्म की मूल बातों के साथ ही विज्ञान की ये मूल बातें मेरे अस्तित्त्व में गहरे उतर गयीं। स्वामी जी के व्यक्तित्व से मैंने संगीत प्रेम एवं राष्ट्र प्रेम सीखा। सदा ही मैंने उन्हें मार्गदर्शक के रूप में अनुभव किया। यह उन्हीं का प्रभाव था कि जब मैंने किंग्स कॉलेज लन्दन से अपनी पी-एच.डी. पूरी की, तब मेरी एक चाहत थी कि मैं स्वयं को राष्ट्र की वैज्ञानिक समृद्धि के लिए अर्पित करूँगा। स्वामी जी की शिक्षाओं के प्रभाव से कुछ अंशों में ऐसा कर सका। उपनिषदों का सन्देश है- **बलमुपास्व,** बल की उपासना करो। इसी से प्रेरित होकर मैंने राष्ट्र को बलशाली बनाने के लिए-देश को परमाणु बल से समृद्ध करने के लिए स्वयं को अर्पित कर दिया।

इतना कहकर वह थोड़ी देर के लिए रुके। उन्होंने अपने पास बैठे स्वामी गम्भीरानन्द जी की ओर देखा और फिर बोले- मेरे विचार से विज्ञान व अध्यात्म की समन्वित आवश्यकता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। व्यक्तिगत जीवन में तो इनका प्रयोग अनिवार्य है। ऐसा होने पर कभी भी सद्‌गुण एवं सामर्थ्य कम नहीं होती। सद्‌गुण एवं सामर्थ्य दोनों ही हों तो सेवा व सत्कर्म तो होंगे ही। सेवा एवं सत्कर्म का यह सिलसिला यदि अविराम रहे तो कोई भी जीवन को सार्थक एवं सम्पूर्ण बनने से नहीं रोक सकता। इसी के साथ उन्होंने मंच के सामने बैठे युवा प्रतिभागियों से कहा- आपमें से किसी को कुछ पूछना हो तो, निःसंकोच पूछें। उनके इस कथन पर कुछ देर तो सन्नाटा छाया रहा- कोई कुछ बोला ही नहीं। सम्भवतः पद्मश्री, पद्मभूषण एवं पद्मविभूषण से अलंकृत इन महान् वैज्ञानिक से कुछ पूछने में युवाओं को

संकोच हो रहा था।

फिर भी थोड़ी देर बाद एक युवक ने उनसे धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में पूछा- महोदय! यदि व्यक्तिगत जीवन में विज्ञान एवं अध्यात्म दोनों के ही मूलतत्त्व समावेशित हो, तो जिन्दगी में उसका प्रभाव किन रूपों में दिखाई देगा? इस प्रश्न को सुनकर पहले तो उन्होंने प्रश्न एवं प्रश्नकर्त्ता दोनों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। फिर वह बोले- इसका पहला प्रभाव यह होगा कि व्यक्ति की सोच, उसके विचार एवं भाव व्यापक होंगे। कोई हठ, आग्रह, मान्यता उसकी विचारशीलता में आड़े न आएगी। दूसरे प्रभाव के रूप में वह अपनी या अपनों की अथवा औरों की क्षुद्रताओं की नहीं, उद्देश्य की श्रेष्ठता की परवाह करेगा। तीसरे प्रभाव के रूप में वह हर व्यक्ति की, हर धर्म की, हर देश की, ज्ञान एवं कर्म के प्रत्येक क्षेत्र की प्रत्येक श्रेष्ठता को उदारतापूर्वक आमंत्रित करना, इसे सम्मानित करना और स्वीकार करना स्वत: सीख जाएगा। चौथे प्रभाव के रूप में वह अपने सम्पूर्ण जीवन को प्रयोगशाला एवं प्रत्येक कर्म को प्रयोग बना लेगा। ऐसे में उसके पास बर्बाद करने के लिए न समय का कोई क्षण होगा और न ही कर्म का कोई क्षण। वह तो बस अपने पूरे जीवन में सत्य, श्रेष्ठता, सार्थकता व सम्पूर्णता का अनुसन्धान करता रहेगा।

इसके पाँचवे प्रभाव के रूप में उसे वैज्ञानिक-अध्यात्म के समन्वित वरदान के रूप में ऐसी अन्तर्दृष्टि मिलेगी जो कि उसे कहीं, किसी भी अवसर में भटकने, बहकने नहीं देगी। इतना कहकर वह कुछ सोचते हुए बोले- दरअसल यह अन्तर्दृष्टि निर्मल मन की देन है। और निर्मल मन प्राप्त होता है श्रेष्ठ कर्म से। जो वैज्ञानिक अध्यात्म को अपनाने वाले के जीवन की परिभाषा, परिचय व पर्याय बन जाता है। अभी वह इतना ही कह पाए थे कि श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन के अध्यक्ष स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने उनसे कान में कुछ कहा। उन्होंने आँख उठाकर आकाश की ओर निहारा। सांझ ढलने लगी थी, मठ में आरती का समय हो रहा था। थोड़ी ही

देर बाद वे मठ के श्रीरामकृष्ण मन्दिर में बैठे वायलन बजाते हुए आरती गा रहे थे- **खण्डन भवबन्धन जगवन्दन वन्दि तोमाय**। इसी के साथ उनके मन के किसी कोने से यह प्रार्थना भी गूँज रही थी कि हे प्रभु! मेरे देशवासी देश के शिक्षा एवं सामाजिक क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म का उपयोग करने में समर्थ हों, ताकि देश की भवितव्यता संवर सके।

26

उद्देश्यनिष्ठ बने शिक्षण प्रक्रिया

"शिक्षा और सामाजिक क्षेत्र में विज्ञान व अध्यात्म का समान व समन्वित उपयोग होगा तभी शिक्षा औचित्यपूर्ण होगी और समाज प्रगतिशील बनेगा।" यह बोलते हुए डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की आँखों में ऋषियों का तेज दीप्त हो उठा। वह अपनी प्रज्ञा की पावनता और प्रखरता में भविष्य के भारत की उजली तकदीर का समाधान निहार रहे थे। यह अवसर खास था। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय अपनी स्थापना के पच्चीस वर्ष पूरे कर चुका था। आज उसकी रजत जयन्ती मनायी जा रही थी। २१ जनवरी १९४२ की यह शुभ तिथि स्वयं में कई अलौकिक रंग समेटे हुए थी। विश्वविद्यालय के रजत जयन्ती समारोह के विशाल मंच पर विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पं. मदन मोहन मालवीय स्वयं आसीन थे। उनके पार्श्व में बैठे थे महात्मा गान्धी- भारतवासियों के प्यारे बापू। जिनके हाथों में इस समय भारतीय स्वाधीनता महासंग्राम की बागडोर थी। जो कहीं अपने अन्तर्मन की गहराई में भारत छोड़ो आन्दोलन की योजना बुन रहे थे।

इसी महामंच पर विराजमान थे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पं. जवाहरलाल नेहरू और अनेकों अन्य मूर्धन्य मनस्वी। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिभाओं की प्रखर चमक इस मंच पर और समूचे समारोह में सब ओर दिखाई दे रही थी। कार्यक्रम का अध्यक्षीय संचालन करने का दायित्व डॉ. राधाकृष्णन् संभाल रहे थे। वही इस समय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति थे। हालांकि महामना मालवीय जी के आग्रह व अनुरोध पर वह इस विश्वविद्यालय से सन् १९२७ ई. से जुड़े थे। महामना ने उन्हें दर्शनशास्त्र विभाग में ऑनरेरी प्रोफेसर बनाने के साथ विश्वविद्यालय की सीनेट का सदस्य भी बनाया था। इसके पहले वह सन् १९२५ ई. में कलकत्ता विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे। इसी के प्रतिनिधि के तौर पर हार्वर्ड विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित इन्टरनेशनल कांफ्रेंस ऑफ फिलॉसफी में शामिल हुए और वैश्विक रूप से सराहे गए।

बाद के वर्षों में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने कई रूपों में उनकी सेवाएँ ली ओर सम्मानित किया। उनकी अटूट देशभक्ति के विचारों से न सहमत होते हुए भी शिक्षा सेवाओं के लिए ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 'नाइट हुड' (सर) का उच्च सम्मान दिया था। सन् १९३१ से १९३६ ई. तक वह अन्नामलाई विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। लेकिन इसी के साथ महामना का आग्रह बना रहा कि वह स्थाई तौर पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय आ जाएँ। महामना का आग्रह जिसे वह दैवी आदेश से कम नहीं मानते थे- स्वीकार शिरोधार्य कर २४ सितम्बर १९३९ को इस विश्वविद्यालय के कुलपति का पदभार ग्रहण किया। तब से लेकर निरन्तर वह मालवीय जी के अभिन्न सहयोगी थे। मालवीय जी से उनकी निरन्तर चर्चा व विचार विमर्श होता रहता था कि देश के शिक्षा व सामाजिक परिदृश्य में किस भांति क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए जायें।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् को अब तक पूर्व एवं पश्चिम के बीच सेतु के रूप में प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। उनके द्वारा रचित इण्डियन फिलॉसफी, आइडियलिस्टिक

व्यू ऑफ लाइफ, द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ, इस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट, रिलीजन एण्ड सोसायटी एवं रिकवरी ऑफ फेथ आदि ग्रन्थ भारत सहित पश्चिमी देशों में समान रूप से लोकप्रिय थे। शिक्षण कार्य में उनकी अभिरुचि इतनी गहरी थी कि विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में सभी प्रशासनिक दायित्व निभाने के बावजूद वह नियमित निरन्तर दर्शनशास्त्र विभाग में दर्शन शास्त्र की कक्षाएँ लेते थे। उनकी ये कक्षाएँ इतनी रुचिकर होती थी कि इनमें दर्शन के विद्यार्थियों के अलावा विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि अन्य विषयों के विद्यार्थी भी भागे-भागे आते थे। अपनी इन्हीं कक्षाओं में एक दिन उन्होंने कहा था कि 'दर्शन की क्रियाशीलता विज्ञान है और विज्ञान की विचारशीलता दर्शन है।'

वह पूर्वी अध्यात्म एवं पश्चिमी विज्ञान के समन्वय के प्रबल पक्षधर थे। उनका कहना था कि विज्ञान व अध्यात्म के शिक्षा में समायोजन से शिक्षा व शिक्षण की समूची प्रक्रिया अधिक औचित्यपूर्ण व उद्देश्य निष्ठ होगी। वैज्ञानिक जीवन दृष्टि शिक्षक, शिक्षण व विद्यार्थी को जिज्ञासु बनाएगी, प्रश्न करना सिखाएगी, प्रयोगों में पारंगत करेगी। उसमें सत्य को स्वीकारने का साहस होगा। इसी तरह आध्यात्मिक संवेदना के इसमें घुलने से शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया में संवेदनशील उदारता एवं उत्तरदायित्व निभाने के गुणों का विकास होगा। आध्यात्मिकता से उपजे सद्गुण व्यक्तित्व को समस्त क्षुद्रताओं से मुक्त करेंगे। उसमें सुख बांटने एवं दु:ख बंटाने की जीवन शैली विकसित होगी।

इसी तरह वैज्ञानिक अध्यात्म का सामाजिक क्षेत्र में उपयोग समाज को परम्परावादी बनाने की बजाय प्रगतिशील बनाएगा। प्राय: देखा जाता है कि परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, रीति-रिवाज समाज से विचारशीलता, चिन्तन की अभिवृत्ति छीन लेते हैं। वैज्ञानिक जीवन दृष्टि से यह कुहांसा सदा के लिए दूर हो सकेगा। इसके द्वारा समाज अपने अतीत का सही पुनर्मूल्यांकन करने के साथ भविष्य की ओर देख सकेगा उसे संवार सकेगा। आध्यात्मिक सम्वेदनाएँ उसमें पारस्परिक सौहार्द्र, सौमनस्य, एक-

दूसरे के सुख-दुःख में भागीदारी निभाने के सद्गुण विकसित करेंगे। डॉ. राधाकृष्णन् के इन विचारों से उनकी कक्षाओं के सभी विद्यार्थी परिचित थे और प्रेरित भी। वह सदा इस बात से गर्वान्वित होते थे कि वे एक ऐसे विश्वविद्यालय के छात्र हैं जहाँ के कुलपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् हैं।

आज वे सभी समवेत रूप से अपने कुलपति महोदय का अध्यक्षीय उद्बोधन सुन रहे थे। इन्हें सुनने से पूर्व वह महात्मा गांधी, महामना मालवीय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवं पं. नेहरू को सुन चुके थे। अभी तो उनके कुलपति बोल रहे थे- हमारा विश्वास है कि महात्मा गांधी के मार्गदर्शन में हमारे राष्ट्रीय नेता एवं देशवासी मिलकर जल्दी ही स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे। मैं देख रहा हूँ कि सम्भवतः इसमें पाँच-छः साल से अधिक समय न लगे। ऐसे में आज से, अभी से, इसी क्षण से हमारे विश्वविद्यालय के बल्कि मैं तो कहूँगा पूरे देश के शिक्षकों, छात्र-छात्राओं सहित समस्त बुद्धिजीवियों को भारत के भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाली विचार पद्धति की संरचना का कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। हम भगवान् शिव जो समस्त ज्ञान-विज्ञान के आदिगुरु हैं और माता अन्नपूर्णा जो कि सर्व समृद्धि की अधिष्ठात्री हैं- उनकी नगरी काशी में बैठे हैं। वैदिक ऋषियों एवं देवों के स्वर कभी यहीं गूंजे थे। भगवान् बुद्ध ने यहीं अपना सारनाथ संदेश सुनाया था। भारत भूमि के हजारों सन्तों एवं आचार्यों ने यहीं से प्रेरित होकर अपने विचारों को प्रवर्तित किया है।

मेरा आपसे भावपूर्ण अनुरोध है कि क्यों न हम सब महामना एवं महात्मा जी के संरक्षण में देश के शैक्षणिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए वैज्ञानिक अध्यात्म के अनगिन क्रान्ति दीप जलाएँ। शिक्षा का विषय कोई भी हो, पर उसमें वैज्ञानिक जीवन दृष्टि होनी ही चाहिए। उसमें स्पन्दित होनी चाहिए आध्यात्मिक सम्वेदना। उसका उद्देश्य होना चाहिए वैज्ञानिक अध्यात्म पर आधारित सफल एवं समग्र व्यक्तित्व का निर्माण। इसी तरह सामाजिक परिदृश्य में वैज्ञानिक अध्यात्म की ऐसी क्रान्ति किरणें फूटे जिनसे मिट जाए जातीयता, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता

का अंधियारा। बचे तो केवल बस भारतीयता जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आध्यात्मिक पावनता से ओत-प्रोत हो। जिसमें क्षुद्र आग्रहों से उपजे वैमनस्य के कलुष का कोई कीचड़ न हो, जो व्यापक राष्ट्रीय व मानवीय हितों के लिए निरन्तर अनुसन्धान के लिए संकल्पित हों। डॉ. राधाकृष्णन के द्वारा उच्चारित ये अग्नि बीज सुनने वाले के मनों में क्रान्ति की ज्वालाएँ भड़काने लगे। वहाँ उपस्थित वैज्ञानिक वर्ग यह सोचने लगा कि जीवन के अन्य क्षेत्रों की भांति विज्ञान जगत् के लिए भी वैज्ञानिक अध्यात्म आवश्यक है।

27

वैज्ञानिक जब बनेंगे अध्यात्मवादी

"विज्ञान जगत् के लिए आवश्यक है कर्मशील अध्यात्म। वैज्ञानिकों के लिए निहायत जरूरी इस अध्यात्म को मैं वैज्ञानिक अध्यात्म कहता हूँ। बीते युगों के अध्यात्म ने संसार को छोड़ने की बात की और कुछ कर्मकाण्डों तक सिमटा रहा। लेकिन आज के युग में विज्ञान, वैज्ञानिकता एवं वैज्ञानिकों के भारत देश के लिए ऐसा अध्यात्म आवश्यक है, जिसमें वैज्ञानिक कर्मों का अविराम पराक्रम हो, साथ ही हो आध्यात्मिकता की पावन संवेदना। जो विज्ञान को, वैज्ञानिकों के जीवन को सभी कालिख, कलुष और क्रूरताओं से मुक्त रखे।" अपने इस कथन के साथ डॉ. होमी जहाँगीर भाभा ने उस हाल में बैठे हुए वैज्ञानिकों के समूह की ओर देखा और फिर नजर डाली पीछे की ओर लगे एक बड़े से आकर्षक चित्र पर। यह चित्र था महाभारत की युद्धभूमि में अर्जुन की कायरता को देख उसे धिक्कारते हुए स्वयं चक्र धारण करने वाले महायोद्धा महान् दार्शनिक श्रीकृष्ण का।

यह चित्र सचमुच ही बहुत आकर्षक था। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण योद्धावेश में थे। उनकी उंगली में प्रज्वलित चक्र था। उनकी त्यौरियाँ तनी हुई थी, परन्तु होठों पर शान्त मुस्कान थी। भीत अर्जुन उनके पाँवों को पकड़े हुए था। उनके इस रूप को देखकर कौरवों की सेना भी आतंकित और सहमी खड़ी थी। इस चित्र को निहारते हुए डॉ. भाभा बोले- सच कहूँ तो यह चित्र है हमारे परमाणु ऊर्जा सम्पन्न समर्थ राष्ट्र का। पं. नेहरू कहते हैं कि गांधी जी हमारे राष्ट्रपिता हैं। मैं भी महात्मा जी का बहुत आदर करता हूँ; परन्तु इसी के साथ मैं यह भी कहता हूँ, श्रीकृष्ण भारत राष्ट्र के आदिपिता हैं। वे पिताओं के पिता परमपिता हैं। उनके हाथों में प्रज्वलित महाचक्र ऐसा लग रहा है जैसे कि उन्होंने इस चक्र के रूप में प्रचण्ड परमाणु ऊर्जा को धारण किया हो। उनकी तनी हुई त्यौरियाँ आक्रान्ता शत्रुओं के लिए साहसिक प्रत्युत्तर है, जिसे देख शत्रु भयभीत एवं आतंकित है। साथ ही उनके होठों की मुस्कान इस सत्य का आश्वासन है कि हम शान्ति के पक्षधर हैं। और अर्जुन के रूप में वह देश की कायरता और क्लीवता को अपने पाँवों की ठोकरों से प्रचण्ड पौरूष एवं महापराक्रम में रूपान्तरित कर रहे हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण के चित्र की इस व्याख्या ने वैज्ञानिकों के समूह को रोमांचित कर दिया। उन्हें पुनः प्रेरित करते हुए डॉ. भाभा ने कहा- श्रीकृष्ण इसलिए मुझे प्रेरित करते हैं, क्योंकि वह महान् अध्यात्मवेत्ता दार्शनिक होने के बावजूद महाशस्त्र प्रज्वलित चक्र थामे हैं और सतत् कर्मशील हैं। मेरे विचार से तो वह जीवन विज्ञान के महान् वैज्ञानिक हैं। मैं तो कहता हूँ कि भगवद्गीता को राष्ट्रीय पुस्तक एवं वैज्ञानिक अध्यात्म को राष्ट्रीय धर्म के रूप में अपनाया जाना चाहिए। एक ऐसा धर्म जिसमें किसी धार्मिक संकीर्णताओं का कोई स्थान नहीं हो और जिसमें सभी धर्म समान रूप से समाविष्ट हों। देश की स्वाधीनता के बाद गठित हुए परमाणु ऊर्जा आयोग के पहले अध्यक्ष के रूप में वह वैज्ञानिकों के समूह को सम्बोधित कर रहे

थे। उनका विषय था- वैज्ञानिकों का राष्ट्र धर्म। वैज्ञानिकों के इस समूह में नाभिकीय वैज्ञानिकों के अलावा अन्य विधाओं के वैज्ञानिक भी थे। इनमें कई तो ऐसे थे जिनका क्षेत्र परमाणु विधा से एकदम अलग था। जो केवल डॉ. होमी भाभा को सुनने के लिए यहाँ आग्रहपूर्वक आए थे।

स्वाधीन भारत देश के वैज्ञानिकों के लिए डॉ. होमी जहाँगीर भाभा प्रेरणा पुञ्ज थे। बचपन से ही प्रतिभा के धनी डॉ. भाभा के मस्तिष्क में विचारों के तीव्र प्रवाह के कारण नींद कम आती थी। इस पर माता-पिता ने उन्हें जब चिकित्सकों को दिखाया तो उन्होंने कहा, यह इनके अत्यधिक प्रतिभाशील होने के कारण है। तीक्ष्ण प्रतिभा के कारण उन्होंने अपने अध्ययन को भी तीव्रता से पूरा किया। उनमें जहाँ एक ओर चमत्कारी बौद्धिक प्रतिभा थी, वहीं दूसरी ओर था अटूट देश प्रेम और साथ ही चुनौतियों को स्वीकारने की साहसिक क्षमता। यही वजह थी कि रदरफोर्ड, डिराक एवं नील्स बोर जैसे महान् वैज्ञानिकों के साथ काम करने, उनकी सराहना पाने और विदेशों में अनेकों आकर्षक प्रस्तावों के बावजूद उन्होंने देश की वैज्ञानिक प्रगति के लिए काम करने की ठानी। टाटा एवं पं. जवाहरलाल नेहरू के सहयोग से उन्होंने स्वतंत्र देश में परमाणु कार्यक्रम की नींव रखी। ट्राम्बे परियोजना, तारापुर अणुशक्ति केन्द्र, सायरस परियोजना, जेरिलीना परियोजना उन्हीं की देन रही। जिनेवा में 'एटॉमिक पावर फॉर पीस' (अणुशक्ति शान्ति के लिए) की द्वितीय संगोष्ठी के अवसर पर प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्रांसिस पैरा ने जब यह कहा- संसार के अल्प विकसित एवं गरीब देशों को परमाणु शक्ति के बारे में सोचने की बजाय अपने औद्योगिक विकास पर ध्यान देना चाहिए।

तब वहाँ भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे डॉ. भाभा से फ्रांसिस पैरा के इस बड़बोलेपन पर चुप न रहा गया। उन्होंने कहा कि "अन्यों की तो मैं नहीं कहता पर मुझे और मेरे देश को आपकी चुनौती स्वीकार है। मेरा देश विश्व की औद्योगिक शक्ति भी बनेगा और परमाणु शक्ति भी।" उनके इस कथन की सत्यता विश्व में

आज सभी अनुभव कर रहे हैं। परमाणु परियोजनाओं के भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में भी उन्होंने विलक्षण अनुसन्धान किए। उन्होंने ही मीसॉन कण की खोज की। "कास्केड थ्योरी ऑफ इलेक्ट्रॉन शावर्स" का प्रतिपादन भी उन्होंने ही किया। उनके द्वारा लिखी गयी क्वांटम थ्योरी, एलीमेण्ट्री फिजिकल पार्टिकल्स व कॉस्मिक रेडिएशन की पुस्तकें अपने समय में वैज्ञानिकों के द्वारा प्रशंसित रही। यह सत्य भी सम्भवतः कम ही लोग जानते हों कि परमाणु शक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग करने की कल्पना करने वालों में वह विश्व में प्रथम अग्रणी वैज्ञानिक थे।

इन वैज्ञानिक विशिष्टताओं के अलावा संगीत के वह मर्मज्ञ कलाकार थे। इसी के साथ थी उनमें गहन आध्यात्मिक अभिरुचि। आध्यात्मिक साधनाओं एवं वैज्ञानिक अनुसन्धानों की तीव्र त्वरा की वजह से ही उन्होंने विवाह नहीं किया। वह कहते थे कि रचनात्मकता एवं साधना ही मेरी जीवन संगिनी है। उनके अपने समृद्ध पुस्तकालय में जितनी विज्ञान की पुस्तकें थी उतनी ही अध्यात्म की पुस्तकें भी थी। हँसते हुए इसे वे विज्ञान व अध्यात्म का समन्वय कहते थे। पारसी होने के कारण जेन्द अवेस्ता उनका धार्मिक ग्रन्थ था। लेकिन उनकी सबसे प्रिय पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता थी। वह कहते थे कि गीता धार्मिक नहीं आध्यात्मिक पुस्तक है। अपने एकान्त के क्षणों में वह तारवाद्य पर इसके श्लोक गाया करते थे। प्रातः जागरण के समय एवं रात्रि शयन के समय ध्यान करना इनका नियमित क्रम था। वह अपने सहयोगियों को भी सीख देते थे कि वैज्ञानिकों को नियमित ध्यान करना चाहिए। इससे मेधाशक्ति का विकास होता है, अन्तर्प्रज्ञा विकसित होती है। अनुसन्धान कार्य के लिए जिस प्रखर प्रतिभा, असामान्य बौद्धिक ऊर्जा एवं सर्वथा मौलिक सोच की आवश्यकता है वह ध्यान के द्वार से सरलता से प्रवेश करती है।

उन्हें जानने वाले और उन्हें सुनने वाले सभी को डॉ. होमी भाभा की इन उपलब्धियों एवं विशेषताओं के बारे में पता था। तभी तो प्रत्येक व्यक्ति उनकी बात को मन्त्र की तरह ग्रहण करता था। इस सम्मेलन में भी उस दिन उनकी वाणी ने

कितने ही वैज्ञानिकों की दिशा बदली, उनमें राष्ट्रप्रेम जाग्रत् किया। डॉ. होमी भाभा की जीवन शैली ने उन्हें सम्पूर्ण निःस्पृह योगी बना दिया था। बाद के वर्षों में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने उन्हें केबिनेट मन्त्री पद देने का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने अतिविनम्रता से भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी का स्मरण कराया- **श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्व नुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ ३/३५॥** 'स्वयं के कर्त्तव्य का पालन कमतर होते हुए भी दूसरे के कर्त्तव्य से श्रेष्ठ है। अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मरना भी कल्याणकारक है। लेकिन दूसरे का कर्त्तव्य तो भय देने वाला है।' उनकी इस आध्यात्मिक निःस्पृहता के सामने शास्त्री जी जैसे त्याग मूर्ति भी नतमस्तक हो गए। अपनी मृत्यु से एक सप्ताह पूर्व उन्होंने अपने सहयोगियों से कहा था कि देश के धार्मिक जगत् के लोग जिस दिन विज्ञान व वैज्ञानिक अध्यात्म के महत्त्व को पहचान लेंगे उस दिन अपना राष्ट्र विश्व के शिखर पर होगा।

⌘

28

रिसर्च को जहाँ ऋषि अर्चन माना जाता है।

''धार्मिक जगत् के लिए अनिवार्य हैं वैज्ञानिक प्रयोग। आखिर प्रयोगों की परख ही तो किसी तथ्य को खरा और प्रामाणिक बनाती है। प्रायोगिकता एवं प्रामाणिकता दोनों जहाँ बरकरार हैं, उसकी उपयोगिता में कोई संशय नहीं रह जाता। जब से धार्मिक जीवन से वैज्ञानिक अन्वीक्षण, अन्वेषण एवं अनुसन्धान की कड़ियाँ टूटी हैं, तब से धर्म व धार्मिकता के पूरे ढाँचे पर संशय और शंकाओं के बादल छाए हुए हैं। मैं ऋषियों के उस देश से आपके पास आया हूँ, जहाँ कभी रिसर्च को ऋषि अर्चन समझा जाता था। जहाँ विश्व में पहली बार विकासवादी वैज्ञानिकता के सांख्यशास्त्र का प्रतिपादन हुआ। जहाँ गणित के समीकरणों के साथ जीवन विज्ञान पर गम्भीर अनुसन्धान किए गए। जहाँ कभी पदार्थ व चेतना एक साथ अनुसन्धान का विषय बनी थी। पर आज ये कड़ियाँ टूट-बिखर गयी हैं। मैं हिमालय और गंगा के उस महान् देश भारत के अतीत की उस धरोहर से ऋषियों के ज्ञान कणों के साथ आपके लिए गंगा के जल कण लाया हूँ। इसी के साथ मैं आपको देने आया हूँ इस युग की महान् विभूति श्रीरामकृष्ण परमहंस एवं उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द का मानवतावादी सन्देश।''

रिसर्च को जहाँ ऋषि अर्चन माना जाता है। . . . .

यह कहते हुए स्वामी रंगनाथानन्द ने मंच के समीप ही बैठी मास्को विश्वविद्यालय की छात्राओं अंतेचिया, वाविलोवा एवं मैक्सिमोवा को संकेत किया। इन छात्राओं ने स्वामी जी का संकेत समझकर छोटे-छोटे कलशों में भरा हुआ जल एवं आम्रपल्लव उठा लिए और मंगल अभिसिंचन प्रारम्भ कर दिया। इसी के साथ स्वामी जी ने कहा यह गंगा के तटवासी साधु का वोल्गा के तट पर रहने वालों के लिए स्नेह उपहार है। स्वामी रंगानाथानन्द के इस कथन के साथ किए गए गंगाजल के मंगल अभिसिंचन ने मास्को विश्वविद्यालय के उस बड़े से लेक्चर थियेटर में बैठे हुए प्राध्यापकों एवं छात्र-छात्राओं के तन और मन दोनों स्नेह जल से भिगो दिए। यह अक्टूबर १९७७ की एक सांझ थी। मास्को स्टेट यूनिवर्सिटी के आमंत्रण पर स्वामी रंगनाथानन्द उस समय के सोवियत रूस के इस विख्यात् विश्वविद्यालय में पधारे थे। यह समय का वह दौर था जब सोवियत रूस में धर्म और धार्मिकता पर व्यापक परिचर्चा सम्भव न थी। परन्तु स्वामी रंगनाथानन्द अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं के अनुरूप ही यहाँ धर्म व अध्यात्म का वैज्ञानिक एवं मानवतावादी स्वर लेकर आए थे।

१५ दिसम्बर १९०८ में केरल के ट्रिकुर गांव में जन्मे शंकरन कुट्टी साढ़े सत्तरह वर्ष की आयु में श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन में सम्मिलित हुए। सन् १९३३ ई. में उन्हें श्रीरामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी शिवानन्द जिन्हें श्रीरामकृष्ण संघ में महापुरुष महाराज कहा जाता था- से संन्यास दीक्षा मिली। और उनका संन्यास नाम हुआ स्वामी रंगनाथानन्द। अपने प्रारम्भिक दौर में उन्होंने रसोइये का काम किया। स्कूल शिक्षा अधिक न होने के बावजूद अपने अनवरत स्वाध्याय एवं प्रगाढ़ साधना ने उन्हें ज्ञान की अनगिनत धाराओं में निष्णात बनाने के साथ आध्यात्मिकता के शिखर तक पहुँचाया। अपने व्यक्तित्व के प्रभाव एवं प्रभा के बल पर ही उन्होंने विश्व के ५१ से भी अधिक देशों में भ्रमण कर भारत देश के आध्यात्मिक व सांस्कृतिक दूत की भूमिका निभाई। यही प्रकाश उनके द्वारा लिखी गई तकरीबन २० पुस्तकों में भी प्रकट हुआ। अपने समय के प्रायः सभी महान् व्यक्ति किसी न

किसी रूप में उनके सम्पर्क में आए और उनकी सलाह से प्रेरित व लाभान्वित हुए।

इस क्रम में पं. जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री राजीव गांधी, श्री अटलबिहारी वाजपेई और भी न जाने कितने अनगिन लोग हैं। अध्यात्म की सार्वभौमिकता उनका परिचय थी। जिससे परिचित होकर सोवियत रूस के मास्को विश्वविद्यालय ने उन्हें बुलाया था। ६ से १२ अक्टूबर १९७७ की तिथियों में यहाँ उनकी नियमित वक्तृताएँ थीं। लेकिन आज की सांझ वह मास्को विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्राध्यापकों एम. शिरोकोव, बी.जी. कुलेनेस्तोव, वाई.बी. मोल्कानोव, पी. कास्त्रिन एवं अलेक्जेन्द्रोवा के विशेष आग्रह पर अनौपचारिक तौर पर प्राध्यापकों व छात्र-छात्राओं के समूह को सम्बोधित कर रहे थे। वे कह रहे थे कि आधुनिक विज्ञान के शोधकर्त्ताओं को अपने शोध कार्य की सीमाएँ समेटनी चाहिए। उन्हें उनका विस्तार करना चाहिए। यह विस्तार इतना व्यापक हो कि धर्म, धार्मिक जीवन व धार्मिक प्रक्रियाएँ भी उसकी परिधि में आ जाएँ। ऐसा हो सकेगा तो जो अवांछनीय है वह स्वाभाविक मिटेगा और जो सारभूत है वह स्वत: सामने आ जाएगा। और तब उससे व्यक्ति एवं समाज दोनों लाभान्वित होगा।

उनकी यह वक्तृता जो वक्तृता कम वार्तालाप अधिक थी। इससे आनन्दित होते हुए मास्को विश्वविद्यालय की शोध छात्रा स्वेतलाना एवं देलोकरोवा ने लगभग एक साथ ही पूछा कि धर्म एवं अध्यात्म में क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्न को सुनकर स्वामी जी ने मुस्कराते हुए कहा- 'धर्म का व्यक्तित्वगत रूप-व्यक्तिगत रूप अध्यात्म है और अध्यात्म का सामाजिक एवं व्यावहारिक रूप धर्म है। चुँकि समाज में व्यावहारिक रीतियाँ, परिस्थिति, भौगोलिक परिवेश एवं व्यक्तियों के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार परिवर्तनीय है, इसलिए धर्म को भी सामाजिक परिवर्तनों के अनुसार परिवर्तित होते रहना चाहिए। जहाँ तक अध्यात्म की बात है तो यह साधना प्रधान है। इसके लिए प्रयोग की जाने वाली तकनीकों का उद्देश्य है व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास। व्यक्ति की बौद्धिक, भावनात्मक एवं आत्मिक शक्तियों का उच्चतम

रिसर्च को जहाँ ऋषि अर्चन माना जाता है।

विकास। इसकी तकनीकें व्यक्तित्व के भेदों के अनुरूप ही प्रत्येक के लिए भिन्न हैं।' इतना कहने के बाद स्वामी जी ने कहा धर्म हो या अध्यात्म दोनों ही आयामों में वैज्ञानिक प्रयोगों एवं अनुसन्धान का क्रम समाविष्ट होना चाहिए।

इतना कहकर वह कुछ देर के लिए शान्त हो गए। उन्हें सुनने वाले उनको देख रहे थे। इनकी दृष्टियों से अनभिज्ञ वह अपने में बोले- ऐसा हो सके तब धर्म का सार्वभौमिक-सार्वदेशीय रूप प्रकट होगा। वह क्या होगा? प्रो. शिरोकोव ने पूछा। यह होगा आध्यात्मिक मानवतावाद जिसमें सभी धर्मों की श्रेष्ठताएँ समाविष्ट होंगी। यह सभी धर्मों का मिलन बिन्दु होगा। जो किसी एक देश एक जाति के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व मानव के लिए होगा। पर यह तभी सम्भव होगा जब धार्मिक जीवन में वैज्ञानिक प्रयोगों का क्रम चले। विज्ञान एवं अध्यात्म के समन्वय की परिणति ही होगी आध्यात्मिक मानवतावाद। जिसके अन्तर्गत परिस्थिति, परिवेश एवं व्यक्तियों के गुण, कर्म व स्वभाव के अनुरूप उनके व्यवहारों व सामाजिक नीतियों को सतत् परिमार्जित संस्कारित किया जा सकेगा। साथ ही व्यक्तित्व विकास के लिए नयी-नयी आध्यात्मिक तकनीकें भी अन्वेषित होती रहेंगी।

स्वामी रंगनाथानन्द द्वारा उद्बोधित आध्यात्मिक मानवतावाद का यह भारतीय विचार रूस के प्राध्यापकों एवं छात्र-छात्राओं को बहुत रूचा। विदाई के अवसर पर स्वामी जी ने उनसे अनौपचारिक बातों में कहा- क्या ही अच्छा हो कि भारत व रूस के बीच राजनैतिक मैत्री की भाँति आध्यात्मिक मैत्री भी विकसित हो। सम्भवतः उनका यह प्रयास रूस में किया गया आध्यात्मिक बीजारोपण था। वहाँ से आने के बाद स्वामी रंगनाथानन्द अपने आध्यात्मिक-सांस्कृतिक दायित्वों में व्यस्त हो गए। उनकी सेवाओं के लिए भारत सरकार ने उन्हें पद्मविभूषण देने का निश्चय किया। परन्तु उन्होंने इसे लेने से विनम्रतापूर्ण इन्कार करते हुए कहा- मैं श्रीरामकृष्ण संघ का संन्यासी हूँ। जब मेरा कोई निजी जीवन ही नहीं तो निजी पुरस्कार कैसा? उनकी

इन भावनाओं को ध्यान में रखकर सन् १९८२ एवं १९९९ में श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन को इन्दिरा गांधी पुरस्कार एवं गांधी शान्ति पुरस्कार दिए गए। वह वर्ष १९९८ से २५ अप्रैल २००५ अपनी मृत्यु के क्षण तक श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन के अध्यक्ष रहे। उन्हें श्रद्धाञ्जलि देते हुए प्रधानमन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह एवं नेता प्रतिपक्ष लालकृष्ण आडवानी ने कहा था- यूं तो हम दोनों में अनेकों वैचारिक मतभेद हैं, परन्तु इस बारे में हम एकमत हैं कि स्वामी रंगानाथानन्द की शिक्षाओं ने हम दोनों को ही प्रेरित किया है। भविष्य में वैज्ञानिक अध्यात्म की आवश्यकता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यहाँ तक कि प्रबन्धन के उत्कर्ष में भी अनुभव की जाएगी।

⌘

29

प्रबन्धन में अध्यात्म की महती भूमिका

'अध्यात्म में वैज्ञानिक दृष्टिकोण समावेशित हो तो प्रबन्धन में उत्कर्ष के नवीन क्षितिज छुए जा सकते हैं।' विनोबा ने बड़े शान्त स्वर में श्री कृष्णदास जाजू से कहा। जो अभी थोड़ी ही देर पहले जमनालाल बजाज के साथ वर्धा आश्रम आए थे। जमनालाल बजाज देश के प्रतिष्ठित व्यवसायी एवं बड़े धनपति होने के साथ महान् देशभक्त थे। देश के लिए उनका सम्पूर्ण धन ही नहीं समूचा परिवार और स्वयं वे पूरी तरह से समर्पित थे। महात्मा गांधी में उनकी अनन्य निष्ठा थी। बापू भी उन्हें पाँचवा पुत्र मानते थे। कुछ वर्षों पहले उन्होंने बापू से आग्रह किया था- बापू! साबरमती की ही भांति एक आश्रम वर्धा में भी होना चाहिए। महात्मा गांधी ने उनका प्रस्ताव मानकर रमणीक लाल को वर्धा भेजा। परन्तु स्वास्थ्य कारणों से वह वहाँ अधिक दिन रह न सके और तब गांधी जी को अपने सबसे प्रिय शिष्य विनोबा को वर्धा भेजना पड़ा। ८ अप्रैल १९२१ को विनोबा अपने साथियों के साथ वर्धा आए।

इसी के साथ शुरूआत हुई वर्धा में धामनदी से कुछ ही दूर सत्याग्रह आश्रम की। सन् १८९५ ई. में जन्मे विनोबा यूं तो अभी युवक थे, परन्तु उनका व्यापक ज्ञान, लगभग तेईस भाषाओं में उनकी प्रवीणता, कर्मठ तपस्वी जीवन, अविराम आध्यात्मिक साधना और सबसे बढ़कर निश्छल देश प्रेम उन्हें महामानवों की श्रेणी में रखता था। गांधी जी उनके लिए कहते हैं कि विनोबा मेरे पास आशीर्वाद लेने नहीं बल्कि मुझे आशीर्वाद देने आए हैं। वर्धा आने के थोड़े ही समय बाद विनोबा जमनालाल बजाज के मार्गदर्शक और उनकी पत्नी जानकी देवी बजाज के छोटे भाई बन गए। जानकी देवी विनोबा से पथ प्रदर्शन तो अवश्य पाती थी, पर वह उन्हें अपना छोटा भाई ही मानती थी। इन देशभक्त दम्पत्ति ने अपने दोनों पुत्रों कमलनयन बजाज एवं राधाकृष्ण बजाज को विनोबा जी के संरक्षण में आश्रम में रखा था। वे चाहते थे कि विनोबा के ऋषिकल्प जीवन के सान्निध्य में रहकर उनके दोनों पुत्र देशभक्ति और ऋषि जीवन के संस्कार पा सकें।

आज बहुत दिनों के बाद वह श्री कृष्णदास जाजू के साथ आश्रम आए थे। सोचा था कि विनोबा के दर्शनों के साथ बच्चों से भी मिलना हो जाएगा। यहाँ आने पर उन्होंने दूर से देखा कि उनके दोनों पुत्र आश्रम में अन्य विद्यार्थियों एवं विनोबा व उनके सहयोगियों के साथ कड़ी धूप में खेतों में काम कर रहे हैं। जब तक वे पास आए तब तक खेतों का काम खत्म हो चुका था। और विनोबा सभी को साथ लिए आश्रम की अमराई में आ चुके थे। विनोबा के हाथों में गीता की पुस्तक थी। अब वह गीता की कक्षा शुरू करने वाले थे। जाजू जी ने तनिक परिहास के साथ विनोबा से कहा- विनोबा जी! बजाज के बेटों को आगे चलकर बहुत बड़े व्यावसायिक साम्राज्य का प्रबन्धन करना है। गीता की कक्षाएँ क्या उन्हें प्रबन्धन सिखा सकेंगी। विनोबा ने एक नजर कमलनयन एवं राधाकृष्ण पर डाली, जिनके चेहरों से अभी भी पसीना टपक रहा था। फिर उन्होंने गम्भीर स्वर में जाजू जी से कहा- श्रीमद्भगवद्गीता जीवन प्रबन्धन का ग्रन्थ है। जो अपने जीवन का प्रबन्धन कर सकता है, वह जगत् का प्रबन्धन भी कर सकता है।

विनोबा हृदय से आध्यात्मिक एवं मस्तिष्क से वैज्ञानिक थे। उन्होंने गीता की पोथी को माथे से लगाया और बोले- गीता अध्यात्म का वैज्ञानिक ग्रन्थ है। इसमें परम्पराओं की लकीरें मिटाकर प्रयोगों के प्रतिमान स्थापित किए गए हैं। वैदिक ज्ञान की परम्परा में पहली बार गीता ने सत्य के अन्वेषण के लिए वेदों के भी पार और परे जाने की बात की। **त्रैगुण्यविषयावेदानिस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।** ''हे अर्जुन! वेद त्रिगुण विषय का प्रतिपादन करते हैं, तुम त्रिगुण के पार हो वेदों के भी पार चले जाओ।'' क्या यह गीता की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की अभिव्यक्ति नहीं है ? गीता में तो जीवन एवं जगत् की संरचना-क्रिया, इनकी अन्तर्क्रियाओं व इनके परिणामों का बड़ा सूक्ष्म वैज्ञानिक विवेचन है। अब रही गीता में व्यावसायिक प्रबन्धन की बात तो चलो आज इसी पर चर्चा कर लेते हैं।

कृष्णदास जाजू ने जमनालाल बजाज एवं महात्मा गांधी से अनेकों बार विनोबा के बारे में सुना था। कई बार उनसे मिलना भी हुआ, पर आज इस तरह उन्हें सुन पहली बार रहे थे। इस समय विनोबा के मुख, नेत्रों एवं वाणी से ऋषि प्रज्ञा की पावनता एवं प्रखरता प्रकट हो रही थी। वह कह रहे थे- गीता में जीवन प्रबन्धन के द्वारा चार परिणाम प्रत्यक्ष होते हैं। १. तप एवं युक्त आहार-विहार के द्वारा शरीर से स्वस्थ एवं सक्षम, २. प्राणायाम व ध्यान आदि की क्रियाओं से- मानसिक, बौद्धिक रूप से प्रखर प्रतिभावान्, ३. सम्पूर्ण जगत् में परमेश्वर को अनुभव कर-भाव संवेदनाओं से ओत-प्रोत- सामाजिक समरसता-कोमलता एवं सभी के प्रति भातृभाव से परिपूर्ण एवं ४.गीता में दी गयी विविध आध्यात्मिक साधनाओं को करके आध्यात्मिक रूप से उर्वर एवं ऊर्जा से भरपूर।

इसकी समर्थ अभिव्यक्ति व्यावसायिक प्रबन्धन में भी सम्भव है। गीता में बतायी स्थितप्रज्ञता की ओर बढ़ते हुए व्यक्ति में दूरदर्शिता, सूक्ष्मदर्शिता व सम्पूर्णदर्शिता का विकास होता है। इसी के साथ उसमें सन्देह रहित, आग्रह रहित व उद्देश्यनिष्ठ ज्ञान प्रकट होता है। ऐसे व्यक्ति द्वारा बनायी गयी व्यावसायिक योजनाएँ कभी

असफल नहीं होंगी। उसकी विकसित अन्तर्प्रज्ञा के बल पर लिए गए साहसिक निर्णय कभी विफल नहीं होंगे। और अपनी रचनात्मकता के द्वारा सदा कुछ नया करता रहेगा। गीता में प्रतिपादित कर्मयोग को अपनाकर व्यावसायिक योजनाओं का सफल क्रियान्वयन सम्भव है। कर्मयोगी बिना रूके, बिना थके, बिना हारे श्रेष्ठतम कर्म करता है। उसका ध्यान फल में न होकर कर्म में होता है- इसलिए उसके कर्म भी श्रेष्ठता-प्रखरता एवं ऊर्जा के शिखर को छूते हैं। और जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- **न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।** हे तात्! कल्याण कर्म करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती। अर्थात् श्रेष्ठ का परिणाम श्रेष्ठ होगा, तो व्यवसाय में भी समृद्धि आएगी।

ज्ञानयोग के द्वारा व्यक्ति स्वयं के संज्ञान की सदा नवीन संरचना करता है। नवीन जानकारियाँ, प्रतिभा के नवसृजित आयाम उसमें चुनौतियों एवं नए प्रश्नों का समाधान ढूँढने की क्षमता पैदा करते हैं। इन सबके साथ भक्ति के द्वारा परिष्कृत भावना उसमें दूसरों को समझने की, उनके दिलों को छूने, उन्हें अपना बनाने की ताकत देती है। इसी के साथ पैदा होती है नेतृत्व क्षमता, जो बड़े से बड़े व्यावसायिक साम्राज्य को शिखर तक ले जा सकती है। और जब गीता में भगवान् ईश्वर शरणागति की बात कहते हैं, तो उसका मतलब है दिव्यता के साथ दिव्य होकर दिव्यता में निवास करना। ऐसा व्यक्ति सर्वदा काल की चुनौतियों के अनुसार परिवर्तित एवं प्रसन्न रहेगा। उसमें स्वयं के साथ सभी को भावनात्मक रूप से प्रेरित करने की जबरदस्त क्षमता होगी। और उसकी कार्यक्षमता एवं कर्म सम्पूर्णता तो असाधारण रहेगी। और मेरे विचार से अपनी व औरों की क्षमता को प्रकट करने तथा स्वयं में और सभी के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने का नाम ही तो प्रबन्धन है।

कृष्णदास जाजू ने इस तरह की बातें पहली बार सुनी थी। आज उन्हें पहली बार अहसास हुआ कि श्रीमद्भगवद्गीता वैज्ञानिक अध्यात्म का ग्रन्थ है। उन्होंने सुना विनोबा कह रहे थे- गुणों का विकास, गुणों की परख और स्वयं के तथा ओरों

के गुणों का सही नियोजन यही गीता की सीख है और यही प्रबन्धन है। विनोबा की ये बातें सुनकर जमनालाल बजाज पुलकित थे। वह सोच रहे थे कि विनोबा के रूप में गांधी जी ने उन्हें ईश्वर का वरदान किया है। रही बात कमलनयन एवं राधाकृष्ण की तो वे अपने बाबा विनोबा के साथ पुलकित थे। चलते-चलते जमनालाल बजाज ने उनसे पूछा, बेटा तुमने क्या सीखा तो उन दोनों ने ही उत्साहपूर्वक बताया कि बाबा ने मुझे सिखाया है कि जो अपने व्यवहार को सुधार लेता है वह अपने व्यवसाय को भी सुधार लेता है। स्वयं विनोबा इन क्षणों में देख रहे थे भविष्य की झलक, जब वैज्ञानिक अध्यात्म नवयुग के नवीन दर्शन एवं नवीन विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित होगा।

30

इक्कीसवीं सदी का दर्शन एवं विज्ञान-वैज्ञानिक अध्यात्म

नवयुग का नवीन दर्शन और नवीन विज्ञान है- वैज्ञानिक अध्यात्म। इसे देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आँगन में अंकुरित होते-पल्लवित होते देखकर मैं हर्षित हूँ। कुछ ऐसी ही मौन अभिव्यक्ति हो रही थी भारत गणराज्य के तत्कालीन राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के चेहरे पर छाए उत्साह एवं आँखों से छलकती उम्मीदों से। वह ९ दिसम्बर २००६ ई. दिन शनिवार को द्वितीय दीक्षान्त के अवसर पर तकरीबन २ बजे विश्वविद्यालय पधारे थे। यहाँ आने से पहले ही उन्होंने विश्वविद्यालय की विशिष्टताओं के साथ इस संस्था के महान् कुलपिता वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के तपस्वी एवं राष्ट्रनिष्ठ जीवन का परिचय पा लिया था। आचार्य श्री के व्यापक लेखन, उनके द्वारा प्रवर्तित सांस्कृतिक-वैचारिक क्रान्ति, खास तौर पर विज्ञान व अध्यात्म के समन्वय के लिए किए गए आचार्य श्री के प्रयास व वैज्ञानिक अध्यात्म के उनके सम्प्रत्यय ने उन्हें प्रभावित किया था। यहाँ आने पर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति ने उन्हें कम समय में किन्तु सारगर्भित शब्दों में वैज्ञानिक अध्यात्म की अवधारणा का मर्म समझाया।

उन्हें बताया कि किस तरह यहाँ वैज्ञानिक अध्यात्म को ज्ञान की सर्वथा नवीन धारा के रूप में प्रवर्तित-प्रवाहित करने के प्रयास हो रहे हैं। और किस तरह इन प्रयासों की परिणति के रूप में वैज्ञानिक अध्यात्म नवयुग के नवीन दर्शन व नवीन विज्ञान के रूप में स्थापित हो सकेगा। कुलाधिपति के स्नेहिल स्वरों के साथ उत्तराखण्ड के तत्कालीन मुख्यमंत्री माननीय नारायणदत्त तिवारी एवं इस राज्य के राज्यपाल महामहिम सुदर्शन अग्रवाल, विश्वविद्यालय के कुलपति व संकायाध्यक्ष ने महामहिम अब्दुल कलाम का मंच पर स्वागत किया। इस महामंच पर विश्वविद्यालय को स्नेहिल संरक्षण देने वाली स्नेह सलिला शैल जीजी की गरिमामयी उपस्थिति इस अवसर को विशिष्ट बना रही थी। मंच के सामने छात्र-छात्राओं, अभिभावकों, आचार्यों, अधिकारियों का विशाल समूह था। इस क्षण की प्रतीक्षा देश भर के कोने-कोने से आए भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा के किशोर प्रतिभागी भी कर रहे थे। उन्हें भी अपने राष्ट्रपति का दीक्षान्त उद्‌बोधन सुनना था।

डॉ. ए.पी.जे.अब्दुल कलाम ने अपना दीक्षान्त भाषण प्रारम्भ करने से पूर्व कुरल:५९५ का उद्धरण दिया- **जलज नाल उतनी बड़ी, जितनी जल की थाह। नर होता उतना बड़ा, जितना हो उत्साह॥** उनके इन स्वरों को सुनकर सभी ने ऐसा अनुभव किया जैसे कि हिमालय से आ रही बर्फीली हवाओं में सूर्य की ऊष्मा-ऊर्जा व तेज घुल गया हो। उन्होंने कहा- देव संस्कृति विश्वविद्यालय के दूसरे दीक्षान्त समारोह में उपस्थित होकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। मुझे ज्ञात है कि इस विश्वविद्यालय ने स्वतन्त्रता सेनानी और लगभग ३००० पुस्तकों के लेखक पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के स्वप्न को साकार रूप दिया है। इसके बाद उन्होंने विश्वविद्यालय के अनुसन्धान एवं शिक्षण, क्षमता निर्माण, अनुसन्धान एवं अन्वेषण, रचनात्मकता और नवीनीकरण, उच्च प्रौद्योगिकी के उपयोग की क्षमता, उद्यमशीलता, आदर्श नेतृत्व, ग्रामीण विकास उद्यम की सराहना करते हुए इस सम्बन्ध में अपने विचारों का मार्गदर्शन भी दिया।

इसके बाद उन्होंने कहा कि 'छात्र समाज कल्याण के विकास में विज्ञान और अध्यात्म को भी जोड़ सकते हैं जो कि आचार्य जी का स्वप्न था। ऐसा कहते हुए वह बोले- जब विज्ञान और अध्यात्म की चर्चा हो रही है तो मैं आपको अपने एक अनुभव के बारे में बताना चाहूँगा, जो मुझे अन्तरिक्ष विभाग में काम करते समय हुआ। उस समय भारत में अन्तरिक्ष कार्यक्रम के स्वप्न द्रष्टा प्रो. विक्रम साराभाई भूमध्य रेखा के समीप किसी क्षेत्र में अन्तरिक्ष अनुसन्धान केन्द्र स्थापित करने के लिए स्थान खोज रहे थे। बहुत खोजबीन के बाद दक्षिण भारत के केरल राज्य में थुम्बा नामक स्थान को उन्होंने अन्तरिक्ष अनुसन्धान केन्द्र के लिए चुना। जब वह इस स्थान पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि हजारों मछुआरे इस क्षेत्र के गांव में रह रहे थे। वहाँ बहुत सुन्दर प्राचीन सेंट मेगडालेने गिरिजाघर और पादरी का घर भी था। प्रो. साराभाई ने इस स्थान को पाने के लिए अनेक वरिष्ठ अधिकारियों और राजनेताओं से बात की, लेकिन उन्हें सफलता न मिली।

अन्ततः वह इस समस्या के हल के लिए बिशप ऑफ त्रिवेन्द्रम, रेवरेण्ड फादर डॉ. पीटर परेरा से मिले। वह सन् १९६२ ई. का एक शनिवार था। जब प्रो. साराभाई ने पादरी से अपनी सारी बातें बतायीं। उनकी बातें सुनकर पादरी मुस्कराए। अगले दिन रविवार की प्रार्थना के बाद उन्होंने वहाँ एकत्रित श्रद्धालुओं से कहा, मेरे बच्चो, मेरे साथ यहाँ एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक बैठे हुए हैं, जो अपने अन्तरिक्ष अनुसन्धान के लिए हमारे गिरिजाघर और मेरे घर वाली जगह लेना चाहते हैं। प्यारे बच्चो! विज्ञान और आध्यात्मिकता दोनों ही लोगों के भले के लिए परमेश्वर का आशीर्वाद चाहते हैं। बच्चों क्या हम वैज्ञानिक केन्द्र के लिए उन्हें यह आध्यात्मिक केन्द्र सौंप सकते हैं? इस पर एक स्वर में सभी ने कहा- आमीन। फिर देखते-देखते सब ओर 'आमीन' का स्वर गूंज उठा। इस तरह वैज्ञानिक प्रयास एवं आध्यात्मिक सम्वेदना के मिलन से भारत में अन्तरिक्ष युग का प्रारम्भ हुआ।

उनके द्वारा कही गयी यह घटना उन्हीं के द्वारा लिखित पुस्तक- 'इनडोमिटेबल स्प्रिट' में अंकित है। इस पुस्तक का **अदम्य साहस** के नाम से हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है, जहाँ इसे १२८-१३० पृष्ठ में पढ़ा जा सकता है। इसी पुस्तक में १२५ पृष्ठ पर एक अन्य घटना है। सन् १८९३ में एक जहाज जापान से अमेरिका जा रहा था। उस जहाज में सैकड़ों लोग थे, जिनमें दो विशिष्ट भारतीय स्वामी विवेकानन्द और जमशेद नौशेरवान जी टाटा भी थे। जमशेद जी भारत में इस्पात संयंत्र स्थापित करना चाहते थे, परन्तु इसकी प्रौद्योगिकी देने से अंग्रेजों ने न केवल मना किया, बल्कि उनका मजाक भी उड़ाया- यदि भारतीय इस्पात उत्पादन करेंगे तो क्या ब्रिटेन के लोग उसका भोजन करेंगे। बातचीत के क्रम में जमशेद जी ने ये बातें स्वामी विवेकानन्द को बतायी। और उनसे कहा कि वह इंग्लैण्ड से निराश होकर अमेरिका जा रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें सफलता का आशीर्वाद दिया। लेकिन साथ ही उन्हें यह भी सलाह दी कि बेहतर हो कि आप औरों से टेक्नोलॉजी मांगने की बजाय अपने देश का वैज्ञानिक ढांचा विकसित करें।

टाटा स्वामी जी के आशीर्वाद से अमेरिका से सफल होकर लौटे, परन्तु साथ ही उनके मन में विवेकानन्द जी की बात बनी रही। उन्होंने २३ नवम्बर १८९८ को उन्हें एक पत्र लिखा-

२३ नवम्बर, १८९८

प्रिय स्वामी विवेकानन्द,

मुझे विश्वास है कि आपको जापान से शिकागो कि वह यात्रा याद होगी जिसमें जहाज पर मैं आपके साथ था। मुझे भारत में संन्यास भाव के विकास के सम्बन्ध में आपके विचार अभी भी याद है। आपका वह वचन जो आपने संन्यासियों के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में कहा था। संन्यासी का कर्त्तव्य है कि वह अपनी ऊर्जा को नष्ट न करे, बल्कि उसको उपयोगी कार्यों में लगाए।

मैं इन विचारों का उपयोग विज्ञान अनुसन्धान संस्थान की अपनी योजना में करना चाहता हूँ। इस संस्थान के सम्बन्ध में आपने जरूर सुना या पढ़ा होगा। मैं मानता हूँ कि संन्यास भाव का इससे बेहतर उपयोग कहीं नहीं हो सकता। इस भाव से भरे हुए लोगों के लिए मठ या आवासीय परिसर स्थापित किए जायें, जहाँ वे साधारण सुविधाओं के बीच जीवन गुजारते हुए अपने आपको विज्ञान और मानविकी विकास के लिए समर्पित कर सकें। मेरा विश्वास है कि यदि कोई सक्षम नेता इस तरह के संन्यास के पक्ष में अभियान चलाता है तो इससे संन्यास-विज्ञान और देश की प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि होगी। मैं जानता हूँ कि इस अभियान के सर्वश्रेष्ठ नायक स्वामी विवेकानन्द ही हो सकते हैं। क्या अपनी परम्परा में ऐसा जीवन मूल्य पैदा करने के ध्येय में आप अपने आपको लगाने की सोच रहे हैं ? अच्छा होता यदि इस सम्बन्ध में जन जागृति फैलाने के आशय का एक प्रेरणादायी पैम्पलेट आप तैयार करते। मुझे इसके प्रकाशन का पूरा व्यय वहन करने में खुशी होगी।

– जमशेद जी एन. टाटा

स्वामी विवेकानन्द के मार्गदर्शन व आशीर्वाद तथा जमशेद जी जैसे दूरद्रष्टा की कोशिशों से सन् १९०९ ई. में भारतीय विज्ञान संस्थान- बंगलोर की स्थापना हो सकी। भारतीय विज्ञान संस्थान दो महान् व्यक्तियों की दूरदृष्टि (प्रकारान्तर से विज्ञान व अध्यात्म के सम्मिलित प्रयत्न से) से स्थापित हो सका। यह भौतिकी, एयरोस्पेस, प्रौद्योगिकी, ज्ञान आधारित उत्पाद, जीव विज्ञान और जैव प्रौद्योगिकी का एक विश्वस्तरीय संस्थान है।

इन प्रेरक विचारों के संकलक रचनाकार डॉ. ए.पी.जे. कलाम ने कहा कि विश्व के किसी भी देश में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते। किसी भी देश में वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए गिरिजाघर की भूमि नहीं दी गयी। ऐसा केवल भारत में ही हुआ। आज के दौर में हमें इससे और भी कई कदम आगे बढ़ना है। अब अध्यात्म

की क्रियाओं तकनीकों, प्रयोगों का वैज्ञानिक विधि से अनुसन्धान करना है। भले ही इसके लिए हमें सर्वथा नवीन प्रयोग प्रणाली, शोध तकनीकें, अनुसन्धान विधियाँ खोजनी पड़ें। एक सर्वथा नवीन ढांचा तैयार करना पड़े, विकसित करना पड़े। यह अनूठा कार्य भी अपने इसी देश में हो सकता है। यही देश ऐसा है जहाँ यह सर्वथा नवीन उपक्रम स्थापित कर पाना सम्भव है। यदि ऐसा हो सका तब मानव जीवन की शारीरिक, मानसिक, यहाँ तक कि सामाजिक, राजनैतिक, वैश्विक समस्याओं के लिए समाधान के नए द्वार खुलेंगे।

दीक्षान्त अवसर पर डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम थोड़ी ही देर रहे। परन्तु अपनी पढ़ाई खर्च के लिए घर-घर अखबार पहुँचाने वाले किशोर से लेकर भारत को मारक मिसाइल की क्षमता से लैस करने वाला वैज्ञानिक, १९९८ ई. में पोरखण के द्वितीय विस्फोट के सूत्रधार, और अन्ततः भारत गणराज्य के राष्ट्रपति के शीर्षपद तक पहुँचने वाले इस अनूठे व्यक्तित्व को पाकर देवसंस्कृति विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राएँ अभिभूत थे। देश के अन्य भागों से आए भारतीय ज्ञान परीक्षा के प्रतिभागी किशोर छात्र-छात्राएँ भी पुलकित थे। इस थोड़ी ही देर में दीक्षान्त भाषण के उपरान्त डॉ. कलाम उपाधि पाने वाले कई छात्र-छात्राओं से मिले। उनके साथ फोटो खिंचवाई। उनसे हाथ मिलाया और उन्हें एक-दो मन्त्र वाक्यों से प्रेरित किया।

कुछ ही घण्टों में विश्वविद्यालय ने उनकी कई स्मृतियाँ स्वयं में संजोकर उन्हें विदा किया। यूं तो उनकी सभी पुस्तकें पठनीय एवं प्रेरक हैं। पर विज्ञान एवं अध्यात्म के सम्बन्ध में उनकी रचना **अदम्य साहस** के कई बिन्दु मर्मस्पर्शी हैं। इसी पुस्तक के १३४ पृष्ठ पर वह कहते हैं- एक छात्र के प्रश्न का उत्तर देते हुए मैंने कहा कि विज्ञान की कोशिश है कि लोगों का भौतिक जीवन बेहतर हो, जबकि अध्यात्म का प्रयास है कि प्रार्थना आदि उपायों से इन्सान सच्ची राह चले। विज्ञान और अध्यात्म के मिलन से तेजस्वी नागरिक का निर्माण होता है। तर्क और युक्ति विज्ञान व अध्यात्म के मूल तत्त्व हैं। धार्मिक व्यक्ति का लक्ष्य आध्यात्मिक

अनुभूति प्राप्त करना है, जबकि वैज्ञानिक का मकसद कोई महान् खोज या अविष्कार करना होता है। यदि जीवन के ये दो पहलू आपस में मिल जाएँ तो हम चिन्तन के उस शिखर पर पहुँच जाएँगे जहाँ उद्देश्य एवं कर्म एक हो जाते हैं।

इस मिलन के लिए जरूरी है गम्भीर अध्ययन-अनुसन्धान यात्रा। और यह उसी रीति से होनी चाहिए जैसा कि टाटा ने सोचा था कि ऐसे आध्यात्मिक व्यक्ति जो साधारण सुविधाओं के बीच जीवन गुजारते हुए विज्ञान एवं मानविकी के लिए स्वयं को समर्पित कर दे। युगऋषि वेदमूर्ति तपोनिष्ठ आचार्य श्री ने अपने युग में इसी स्वप्न को साकार रूप दिया था। पवित्र नदी गंगा के तट पर साधना आरण्यक ब्रह्मवर्चस को ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के रूप में स्थापित करना। विश्व में पहली वैज्ञानिक अध्यात्म की प्रयोगशाला की स्थापना, एक ऐसी स्थापना जिसने बाद में अपना विस्तार देवसंस्कृति विश्वविद्यालय के रूप में किया।

31

ब्रह्मवर्चस से आरम्भ हुई यात्रा देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँची

वैज्ञानिक अध्यात्म की अध्ययन-अनुसन्धान यात्रा की सही व सम्पूर्ण शुरूआत ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना के साथ हुई। उस दिन सन् १९७९ ई. के जून महीने की ५ तारीख थी। युगशक्ति वेदमाता गायत्री के अवतरण के महापर्व का उल्लास चहुँ ओर छलक रहा था। गायत्री जयन्ती-गायत्री उपासकों के लिए, युगतीर्थ शान्तिकुञ्ज के आश्रम निवासियों के लिए सदा से महत्त्वपूर्ण रही है। आज इसका महत्त्व पिछले वर्षों की अपेक्षा कहीं बढ़कर था। आज वेदजननी-ज्ञान की आदिमाता गायत्री अपने साथ वैज्ञानिक अध्यात्म के ज्ञान प्रवाह को लेकर अवतीर्ण हो रही थी। ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान इसी के साकार रूप में आविर्भूत हुआ था। इसी का आज उद्घाटन होना था। शान्तिकुञ्ज से दो-ढाई फर्लांग की दूरी पर भगवती गंगा की सप्तधाराओं के किनारे ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ब्रह्मलोक के ज्ञान पुञ्ज की तरह धरा पर साकार हुआ था, जो युगद्रष्टा युगऋषि आचार्य श्री के स्वप्नों का साकार रूप था।

प्रातः बेला कुछ दूर चलकर मध्याह्न की ओर बढ़ चली थी। युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव शान्तिकुञ्ज के कार्यक्रमों को पूर्ण करके ब्रह्मवर्चस आ चुके थे। उनके

साथ ही आया था शान्तिकुञ्ज के कार्यकर्त्ताओं का समूह। क्षेत्रों से गायत्री परिवार के परिजन और शान्तिकुञ्ज के कुछ कार्यकर्त्ता यहाँ पहले से थे। यह उपस्थिति आज के दिनों में मनाए जाने वाले शान्तिकुञ्ज के पर्वों जितनी तो नहीं थी। पर ये वे कुछ लोग थे, जिन्होंने ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के नींव की ईंटें रखी थी। और जो स्वयं युग निर्माण मिशन, शान्तिकुञ्ज के विचारक्रान्ति अभियान एवं ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के वैज्ञानिक अध्यात्म की प्रतिष्ठापना के लिए नींव की ईंटों की तरह खपने के लिए उद्यत थे। युगऋषि गुरुदेव ने यहाँ पहुँचते ही इन सबको बड़ी उम्मीद भरी नजरों से निहारा। इन सबने भी उच्च स्वर से अपने सद्गुरु का जयघोष किया। इसके बाद देर तक ब्रह्मवर्चस के भूमितल पर मन्दिरों में दीप जलते रहे, घण्टियाँ गूंजती रही और वेदमाता अपने अलग-अलग चौबीस रूपों में यहाँ प्रतिष्ठित होती रहीं।

आदिशक्ति माता गायत्री के चौबीस स्वरूपों की प्रतिष्ठा, गायत्री महामंत्र के चौबीस पुरश्चरण करने वाले आचार्य श्री ने सम्पन्न की। इसके बाद उन्होंने यहाँ जुटे कार्यकर्त्ताओं को सम्बोधित करना प्रारम्भ किया। उनकी वाणी का प्रवाह प्रारम्भ होते ही गंगा की सातों जलधाराओं को छूता हुआ वायु का प्रवाह जेठ के आतप को शीतल करने लगा। गुरुदेव के मुख से उच्चारित देवियों एवं सज्जनों! इन दो शब्दों ने सबकी सारी थकान हर ली। उन्होंने कहा- आज हम सब ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के रूप में जिस वैज्ञानिक अध्यात्म की अनुसन्धानशाला की स्थापना कर रहे हैं, वह कल इक्कीसवी सदी के उज्ज्वल भविष्य का वैचारिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक आधार बनेगा। वैदिक युग के ऋषियों ने विज्ञान एवं अध्यात्म को समन्वित रूप से देखा था। और इस महाविज्ञान पर गहन अन्वीक्षण, अन्वेषण किए थे; परन्तु मध्ययुग के बाद और आधुनिक युग में जो परिस्थिति बनी उनमें विज्ञान एवं अध्यात्म को जोड़ने वाली कड़ियाँ टूट गयी।

इन टूटी कड़ियों के कारण ही विज्ञान विनाशकारी बन गया। और अध्यात्म मूढ़ताओं, परम्पराओं की पूजा-पत्री से आच्छादित हो गया। दूसरे विश्वयुद्ध से शुरू हुई परमाणु अस्त्रों की होड़ अभी थमी नहीं है। अध्यात्म की पावनता एवं सृजन

सम्वेदना भी पता नहीं कहाँ जा छुपी है। इस विकट स्थिति से उबरने के लिए विज्ञान एवं अध्यात्म के समन्वय की जरूरत है। जरूरत है नए सिरे से वैज्ञानिक अध्यात्म की अध्ययन-अनुसन्धान यात्रा शुरू करने की, जिसे शुरू तो हम सब मिलकर करेंगे, लेकिन जिसे हमारी भावी पीढ़ियाँ गतिशील बनाए रखेंगी। गुरुदेव के शब्द सुंनने वालों की मानसिक चेतना में नयी लहरें पैदा कर रहे थे। उनमें से कई सोच रहे थे कि वैज्ञानिक अध्यात्म की शोध का स्वरूप क्या होगा। यह शोध किस तरह सम्पन्न होगी ? उनके इस प्रश्नों ने सम्भवतः युगऋषि की चिन्तन चेतना को छुआ।

और वह स्वस्फूर्त हो कहने लगे- वैज्ञानिक अध्यात्म की यह शोध वैचारिक-दार्शनिक एवं क्रियात्मक-प्रायोगिक दोनों तरह की होगी। इसमें वैचारिक या सैद्धान्तिक शोधकार्य के अन्तर्गत युग की वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन-अनुसन्धान किए जाएँगे। वैज्ञानिक जीवन दृष्टि एवं आध्यात्मिक जीवन मूल्यों को ध्यान में रखते हुए समाधान खोजे जाएँगे। इन समाधानों की खोज के साथ ही वैज्ञानिक अध्यात्म का दार्शनिक-वैचारिक ढाँचा आकार लेगा। वैज्ञानिक-अध्यात्म के रूप में नवयुग का नवीन दर्शन प्रकट होगा, जो वर्तमान की दार्शनिक मान्यताओं की तरह एकांगी नहीं, बल्कि समग्र एवं व्यावहारिक होगा। यह ऐसा दर्शन होगा, जिसे सही अर्थों में जीवन दर्शन कहा जा सके।

यही जीवन दर्शन क्रियात्मक एवं प्रायोगिक शोधकार्य की आधारभूमि बनेगा। इस प्रायोगिक शोध के भी दो आयाम होंगे। इसमें पहली तरह की शोध सर्वेक्षण कार्य के आधार पर की जाएगी। समस्याओं के अनुरूप परिवार एवं समाज का विभिन्न स्तर पर सर्वेक्षण। इसके बाद समस्याओं के समाधान की खोज। इस प्रक्रिया में सर्वेक्षण के अतिरिक्त प्रश्नावलियों एवं साक्षात्कार आदि की विधियों का प्रयोग भी किया जा सकेगा। ये विधियाँ तो खैर समस्या एवं परिस्थितियों के अनुरूप विकसित होती रहेगी। लेकिन इन सबका मकसद एक ही होगा- आध्यात्मिक चिन्तन, चरित्र

एवं व्यवहार के प्रभाव का वैज्ञानिक अध्ययन। आध्यात्मिक विचार प्रवाह एवं आध्यात्मिक जीवन शैली की व्यापक वैज्ञानिक परख।

यही परख प्रयोगशालाओं में की जाएगी। इसके मुख्यतया तीन बिन्दु होंगे- पहला- आध्यात्मिक साधनाओं के शारीरिक प्रभाव। उदाहरण के लिए मन्त्र जप, उपवास आदि के शरीर पर असर का वैज्ञानिक अध्ययन। दूसरा- आध्यात्मिक प्रयोगों का मानसिक क्षमताओं एवं मानवीय व्यवहार पर प्रभाव। यह अध्ययन मनोवैज्ञानिक होगा। इसका ही अगला कदम परामनोवैज्ञानिक अध्ययन-अनुसन्धान के रूप में सामने आएगा। जिसमें साधक द्वारा निरन्तर की जा रही आध्यात्मिक साधनाओं के विशिष्ट प्रभावों की वैज्ञानिक परख की जाएगी। इस क्रम में परामनोवैज्ञानिक शक्तियों, जैसे कि दूरश्रवण, पूर्वाभास, सुदूर संवेदन के साथ प्राणऊर्जा, वैद्युत् चुम्बकीय शक्ति की विशिष्टता को भी परखा-जाँचा जाएगा। इस सबके साथ उन तकनीकों का भी विकास किया जाएगा, जिससे आध्यात्मिक व्यक्तित्व की सच्चाई का वैज्ञानिक ऑकलन किया जा सके।

इतना सब कुछ एक प्रवाह में कहने के बाद युगऋषि आचार्य श्री थोड़ी देर मौन रहे। उनकी आँखों ने जैसे शून्य में कुछ देखा। उनकी चिन्तन चेतना में जैसे भविष्य ने यकायक अपनी झलक दिखाई। और वे हल्के से मुस्करा उठे, फिर बोले यह सब काम बहुत बड़ा है। इसके लिए यह स्थान कम है और लोग भी थोड़े हैं। इसलिए भविष्य में इसी का विकास महान् विश्वविद्यालय के रूप में होगा। जो मैंने स्वप्न देखा है वह कभी अधूरा नहीं रहेगा। मेरे स्वप्न सदा पूरे हुए हैं, यह भी होगा। ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के उद्देश्य अपनी व्यापक क्रियाशीलता में विश्वविद्यालय का रूप लेंगे, जहाँ देवसंस्कृति के अन्य अनेकों आयाम प्रकट होंगे। जहाँ वैज्ञानिक अध्यात्म का नव्य एवं भव्य भविष्य साकार होगा।

⌘

32

जल उठे हैं अनगिन क्रान्ति दीप

भविष्य के देव संस्कृति विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक अध्यात्म के भविष्य के अनेकों इन्द्रधनुषी रंग सुनने वालों के मनोआकाश में उभर रहे थे। आज सांध्यकालीन कक्षा थी। जिसका इन्तजार केवल उन्हीं को नहीं होता, जो इस विश्वविद्यालय की विविध कक्षाओं में विभिन्न विषयों को पढ़ते हैं, बल्कि उन्हें भी होता है जो इन्हें पढ़ाते हैं। विश्वविद्यालय के कुलपति, कुलसचिव, संकायाध्यक्ष, अन्य अधिकारी एवं कर्मचारीगण सभी को इस विशेष कक्षा की प्रतीक्षा होती है। आज भी सांझ ढले मेस हॉल के ऊपर वाले दोनों हॉलों में लोग बैठ चुके थे। इस कक्षा में विश्वविद्यालय में अध्ययनरत एवं कार्यरत लोगों के अलावा शान्तिकुञ्ज एवं ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के कार्यकर्त्ता भी उत्साहपूर्वक पहुँचते हैं। क्षेत्रों से शान्तिकुञ्ज के विभिन्न सत्रों में आए परिजन एवं अतिथि भी इस कक्षा में उपस्थित होने के लिए आतुर रहते हैं। यही वजह है कि इस भारी उपस्थिति के कारण न केवल ऊपर के दोनों हॉल भर जाते हैं, बल्कि बाहर के गलियारे में भी लोग खड़े और बैठे रहते हैं।

आज भी स्थिति कुछ ऐसी ही थी। विषय भी रोचक था। देवसंस्कृति विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक अध्यात्म के वर्तमान स्वरूप और इसकी भविष्यत् योजनाओं पर प्रकाश डाला जाना था। पिछले कुछ समय पूर्व विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक अध्यात्म विभाग की विधिवत स्थापना हो चुकी है। प्रो. बी.पी. शुक्ला इस विभाग के अध्यक्ष हैं। उन्हें सहयोग देने एवं विभाग की सभी गतिविधियों के संयोजन एवं संचालन का दायित्व आध्यात्मिक अभिरूचि की प्रखर प्रतिभाशाली युवा वैज्ञानिक शाम्भवी मिश्रा पर है। अभी की स्थिति में वैज्ञानिक अध्यात्म विषय को प्रत्येक कक्षा के प्रत्येक सेमेस्टर में विशेष एवं अनिवार्य प्रश्नपत्र के रूप में जोड़ा गया है। यह प्रक्रिया उत्तरोत्तर विकसित क्रम में है। प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम के स्तर पर वैज्ञानिक अध्यात्म के आधारभूत तत्त्व, पी.जी. डिप्लोमा के प्रथम सेमेस्टर में वैज्ञानिक अध्यात्म के आधार, इसके द्वितीय सेमेस्टर में वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रयोग सम्मिलित हैं।

स्नातक यानि कि बी.ए./बी.एस-सी. की कक्षाओं के प्रथम सेमेस्टर में वैज्ञानिक अध्यात्म की आधारभूत संरचना, द्वितीय सेमेस्टर में वैज्ञानिक अध्यात्म का इतिहास, तृतीय सेमेस्टर में विश्व के विभिन्न धर्मों में वैज्ञानिक अध्यात्म, चतुर्थ सेमेस्टर में आध्यात्मिक साधनाओं की वैज्ञानिक प्रकृति, पंचम सेमेस्टर में वैज्ञानिक अध्यात्म के समसामयिक प्रारूप (मॉडल्स) एवं षष्ठम् सेमेस्टर में जीवन प्रबन्धन में वैज्ञानिक अध्यात्म पढ़ाए जाने की व्यवस्था है। स्नातकोत्तर कक्षाओं यानि कि एम.ए./एम.एस-सी के लिए यह क्रम अपेक्षाकृत अधिक विकसित है। इसके पहले सेमेस्टर में वैज्ञानिक अध्यात्म का दर्शन, दूसरे सेमेस्टर में विज्ञान एवं अध्यात्म में समान तत्त्व, तृतीय सेमेस्टर में वैज्ञानिक अध्यात्म की अनुसन्धान विधियाँ एवं चतुर्थ सेमेस्टर में पढ़ाया जाने वाला विशेष प्रश्न पत्र एम.ए. या एम.एस-सी विषय के अनुरूप निर्धारित किया गया है।

उदाहरण के लिए १. योग विज्ञान एवं समग्र स्वास्थ्य में वैज्ञानिक अध्यात्म के व्यावहारिक प्रयोग, २. व्यावहारिक योग एवं मानव उत्कर्ष में वैज्ञानिक अध्यात्म के व्यावहारिक प्रयोग, ३. नैदानिक मनोविज्ञान में वैज्ञानिक अध्यात्म के व्यावहारिक प्रयोग, ४. पत्रकारिता एवं जनसंचार में वैज्ञानिक अध्यात्म के व्यावहारिक प्रयोग एवं ५. भारतीय संस्कृति एवं पर्यटन अध्ययन में वैज्ञानिक अध्यात्म के व्यावहारिक प्रयोग। यह तो वर्तमान का ढाँचा है, जिसे वैज्ञानिक अध्यात्म विभाग ने तैयार किया है। ऐसा कहते हुए कुलाधिपति ने इसके पूर्व की पृष्ठभूमि बताई। किस तरह उनके माता-पिता समेत पूरा परिवार दशकों से गुरुदेव से जुड़ा रहा है। उन्होंने यह भी बताया कि अपने विद्यार्थी जीवन में जब कभी वह गुरुदेव से मिलने मथुरा जाया करते थे तो उन्हें वैज्ञानिक अध्यात्म की भविष्यत् योजनाओं के लिए तैयार करते थे। इसी क्रम में उन्होंने गुरुदेव के कई अविस्मरणीय मर्मस्पर्शी संस्मरण सुनाए।

यह क्रम पता नहीं कब तक यूं ही चलता रहता, लेकिन तभी बी.एस-सी. की एक छात्रा ने पूछा- पापा जी! हम सबको वैज्ञानिक अध्यात्म के भविष्य के पाठ्यक्रमों के बारे में बताएँ। छात्रा के स्नेहपूर्ण प्रश्न से अन्तर्प्रज्ञा में स्वाभाविक ही उत्तर प्रतिध्वनित हुआ। यह विद्यार्थियों का अपनत्व भरा स्नेह है कि वे सब अपने प्रिय कुलाधिपति को पापा जी कहते हैं। उत्तर में उन्हें भी स्नेहशील अभिभावक का स्नेह दिया जाता हे। उन पर जी-जान से हृदय की ममता लुटायी जाती है। जहाँ तक वैज्ञानिक अध्यात्म की भविष्यत् योजनाओं की बात है तो उन्हें बताया गया कि पूज्यवर के सूक्ष्म मार्गदर्शन में वैज्ञानिक अध्यात्म विभाग इसके लिए जोर-शोर से तैयारियाँ कर रहा है। कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को केन्द्र में रखकर पी.जी. डिप्लोमा एवं पोस्ट ग्रेजुएट डिग्री के पाठ्यक्रम तैयार किए जा रहे हैं। इनमें से पहला बिन्दु स्वास्थ्य पर आधारित है। इसमें शारीरिक-मानसिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य संरक्षण के दो आयाम हैं। दूसरे बिन्दु का सम्बन्ध प्रबन्धन से है- इसमें संगठन, व्यवसाय एवं अर्थ प्रबन्धन के क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म के सिद्धान्त एवं तकनीकों के उपयोग पर आधारित पाठ्यक्रम तैयार हो रहे हैं। तीसरा बिन्दु व्यवहार विज्ञान से

सम्बन्धित है, इसमें आध्यात्मिक मनोवैज्ञानिक एवं मानव संसाधन विकास के क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म का उपयोग हो सके, इस पर पाठ्यक्रम तैयार किए जाने की योजना है।

इसका अगला बिन्दु प्रतिभा विकास से सम्बन्धित है- इसमें व्यक्तित्व परिष्कार, सुनिश्चित सफलता के लिए क्षमताओं का अर्जन, व्यावसायिक एवं आध्यात्मिक कुशलताओं के विकास के लिए उपयोगी पाठ्यक्रम तैयार किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक अध्यात्म की रीति-नीति से समाज विज्ञान एवं सामाजिक कार्य के विषय में पाठ्यक्रम तैयार करने की योजना है।

वैज्ञानिक अध्यात्म का दायरा इन सभी क्षेत्रों के अलावा आत्मविज्ञान एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान तक व्यापक हो रहा है। ब्रह्माण्ड विज्ञान भी बहुआयामी है। इनके लिए जो पाठ्यक्रम बनाए जा रहे हैं, उन्हें केवल कक्षाओं में होने वाली प्राध्यापक, विद्यार्थी की वार्ता तक सीमित नहीं रखा जाएगा। इनके लिए उच्च तकनीकी क्षमता सम्पन्न प्रयोगशालाएँ स्थापित होंगी, जहाँ पर वैज्ञानिक अध्यात्म सम्बन्धित बहुआयामी प्रयोग किए जा सकें। विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक अध्यात्म का अध्ययन-अनुसन्धान करने वाले छात्र-छात्राएँ एवं उन्हें मार्गदर्शन देने वाले विशेषज्ञ बाद में इनका निरन्तर विकास करते रहेंगे। इतना कहने के बाद वहाँ उपस्थित सभी को खासतौर पर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का एक श्लोकांश सुनाया गया-

मयैवैते निहताः पूर्वमेव, निमित्तमात्रं भव्य सव्यसाचिन्।

"हे बायें हाथ से धनुष चलाने में प्रवीण अर्जुन! ये सभी शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं, तू तो केवल निमित्त मात्र बन जा।"

इसके बाद कक्षा में ध्यान का क्रम प्रारम्भ हुआ। इस श्लोक के अनेकों अर्थ ध्यान में उभरते रहे। इस पुस्तक के लेखक के मन में यही सत्य उभरा कि अब तक

के जीवन में जो भी श्रेष्ठ हो सका, वह सब युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव के हाथों का यंत्र बनने, स्वयं को उनका निमित्त बनाने से ही हुआ। महानता की डगर पर चलते हुए अभी और मंजिले तय करनी हैं। ध्यान के बाद सभी खुले आकाश में आए। आकाश में तारों के दीप जल चुके थे। बाहर महाकाल के मन्दिर में दीपयज्ञ का आयोजन था। सो वहाँ भी चहुँओर दीप जल रहे थे। यह सब देखकर सभी को ऐसा लगा जैसे कि धरा और गगन में एक साथ वैज्ञानिक अध्यात्म के अनगिन क्रान्ति दीप जगमगाने लगे हों।

⌘